Chapter-8

ॐ ह्रीँ ॐ नमः

पर्व अष्टम्

श्री आत्मानंदजी म.की महान विभूतियोंसे तुलना

"जैनेन्द्र दर्शन समुद्रसुधाकराय ।
सिद्धान्तसार कमल-भमरोपमाय ।
अज्ञानसुप्तजन जागरणारुणाय ।
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय ।"[1]

प्रास्ताविक–भारतीय सस्कृतिसे श्रेष्ठताकी सुवास इसलिए आती है कि उसमे आचारशुद्धि और चारित्र विशुद्धि द्वारा द्रव्य-क्षेत्र-भावादिकी पवित्रता और पात्रताके पुष्प गुच्छ प्राप्त होते है । राजकीय, सा निक एव धार्मिक विषम परिस्थितियोमे जैन धर्मगुरुओने स्वकर्तव्यको निभाते हुए अपना करिश्मा दिखाया, जिसके अतर्गत अन्य उपायोके साथसाथ धर्मरक्षाके उपाय हेतु राज्यके कर्णधार-शासक राजवीओके हृदय परिवर्तन करवाके उन्हे धार्मिकताकी ओर मोडकर उनके अनेक प्रकारके जुल्मो-पीडन-शोषणादिसे प्रजाको बचाया । श्री हेमचद्राचार्यजीने महाराजा कुमारपालको धार्मिक बनाया, तो युगप्रधानाचार्य श्रीविजय हीरसुरीश्वरजी म.की प्रतिभाके प्रभावने अकबर जैसे शहनशाहोंको यहाँ तक प्रभावित किया, कि सम्राटने सुरीश्वरजीको बहुमानपूर्वक आमत्रित करके धर्मवाणी श्रवण करवानेके लिए विज्ञप्ति की । उनके धर्मोपदेश श्रवणके परिणाम स्वरूप भयकर हिसक-शिकारशौकिया-मासाहारी, उस मुगल बादशाहने अपने राज्यमे विभिन्न पर्व दिनोमे कुल मिलाकर वर्षमे छमासके लिए हिंसा पर सर्वथा पाबदी लगायी और स्वय भी मासाहारका त्याग किया । 'जिजिया वेरा' आदि कर भी माफ करवाये (प्रभावक चरित्राधारित) ।

मुस्लिमोके अनुवर्ति-ईसाइयोने भी भारतीय सस्कृतिको उजाडनेमे कोई कसर नहीं छोड़ी थी । वे तो मुस्लिमोसे भी दो कदम आगे थे । मुस्लिमोंने केवल मंदिर तोडे थे, मनको वे मोड नही सके थे, लेकिन ईसाइयोने नूतन आविष्कारों और वैज्ञानिक शिक्षण पद्धतिके पर्देके पीछे अपनी नास्तिक सस्कृतिको उद्धारनेवाली शिक्षाको लादकर भारतीयोकी आस्तिक और विनयप्रधान सस्कृतिके सर्वनाशके बीज जनमानस-भूमिमे वपन करनेका प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप भौतिकता युक्त नास्तिकताके घटाटोप वृक्षके विषैले फल अद्यावधि भारतीय प्रजा भोग रही है ।

<u>श्री आत्मानदजी म. के साहित्य पर अन्य साहित्यकारोका प्रभाव</u>–ऐसे अधाधूध मध्यकालमे भी जैन विद्वानो द्वारा साहित्य रचनाका प्रवाह रुका नही था । हॉ थोडा-सा अवरुद्ध अवश्य हुआ था । लेकिन उन दिनोमे भी मृत्युको महोत्सव बनानेवाली जैनधर्म-सस्कृतिके आत्मिक ज्ञानके आलोकसे अद्भूत उज्ज्वलता प्राप्त साधु समाजने अपनी ज्ञान यात्राको निरतर अग्रेसर रखा था । जैनधर्माधारित कथाये एव अन्य साहित्यिक रचनाये दार्शनिक, सैद्धान्तिक एव उपदेशादिको लक्षित किये हुए हैं । उसीके परिप्रेक्ष्यमे श्री दिनेशजीने जो आक्षेप किये है-**"उधर जैनधर्म पौराणिक आख्यानोंको नये ढंगसे गढकर जनताकी आस्था पर नया प्रभाव जमा रहा था । वैष्णवोंकी धार्मिक कथायें जैन कथायें बननी जा रहीं थीं ।"[2]** यह शायद उनके जैन साहित्यके परापूर्वकी श्रेष्ठ परम्पराकी अनभिज्ञताकी सूचक है । इस मान्यताको निराधार प्रमाणित करनेवाले अनेक प्रमाण विद्यमान हैं । यहॉ केवल "जैन रामायण" विषयक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जो कहानी बहुचर्चित एव लोकप्रिय भी है । **"जैन संस्कृति हिंदु संस्कृतिका विद्रोही बालक है-इस मान्यताके कारण जैन संस्कृतिके बारेमें जैनेतर विद्वानोंमें अज्ञान बढ़ता जा रहा है । आधुनिक अनुसंधानोंने इसे गलत सिद्ध करने पर भी जैन संस्कृतिकी उपेक्षा दूर नहीं हुई है..... हमें यह भी सोचना चाहिए कि, रामकथा केवल वैदिक परंपराकी ही मात्र कथा नहीं है.... जैन रामायणको समझनेके लिए आवश्यक धैर्यका अभाव और जैनधर्म विषयक अज्ञानके कारण ही उत्तेजना बढ़नेसे इसके अध्ययनकी उपेक्षा की जाती है ।"[3]** यहॉ इस

लेखमे इसके अतिरिक्त गुजरात के प्रखर साहित्यकार प्रह्लाद चद्रशेखर दीवानजीका अभिप्राय भी महत्त्वपूर्ण है, साथमे अन्य अनेक विद्वानोके विचारोको प्रस्तुत करके इस अज्ञानमूलक मान्यताका नीरसन करनेका सफल प्रयत्न डॉ शान्तिलाल शाहने 'श्री महावीर शासन' पत्रिकामे किया है ।

जैन साहित्य परपरामे चार अनुयोगाधारित रचनायें प्राप्त होती है, जिनमे चतुर्थ कथानुयोग अतर्गत साधिक लक्ष प्रमाण कहानियाँ निरूपित की गई हैं, जो भ महावीर स्वामीके समयसे–२५०० वर्ष पूर्वसे- और कई तो इससे भी पूर्वके भ श्री पार्श्वनाथजी और भ श्री नेमिनाथजी आदि तीर्थंकारोके समयसे प्रवर्तमान हैं । कई चरित्र-कथाये लाखो वर्ष पूर्व-अत्यन्त प्राचीनकालमे घटित हुई–दर्शायी गई है उन्हीके आधार पर परवर्ती साहित्यकारोने अपनी लेखिनियोका कसब प्रदर्शित किया है । "जिनशासनके मूलागमों (पैंतालीस)में 'ज्ञाताधर्मकथा', 'उपासकदशा', 'अनुत्तरोववाइया' आदिको द्वादशांगीके अंगभूत आगम रूप स्थान प्राप्त होनेसे कथा साहित्यको मानो प्राज्ञ पुरुषोंने उत्तम सौभाग्य प्रदान किया है । भव्यात्माओंके उपकारक अनुयोग चतुष्टयमें चतुर्थ अनुयोग-धर्मकथानुयोग अपना विशिष्ट स्थान रखता है । अतः जैन कथा साहित्य जैसा ठोस कथा साहित्य अन्यत्र दुर्लभ है"[1] इस विषयमे विशेष सशोधन आवकार्य है ।

<u>*साहित्यिक रचनाये और रचयिताओकी परपराये*</u>–जैन साहित्यके प्रति दृष्टिक्षेप करने पर हमे आश्चर्यजनक रचनाओंकी प्राप्ति होती हैं । जैन परपरामे ऐसे अनेक महापुरुष हुए जिन्होने समाजमे धार्मिक प्रभावनाओके साथ साथ साहित्यिक क्षेत्रमे भी अपना महद् योगदान दिया । जिनमे प्राचीन कालमे विशेषतया उल्लेखनीय है–*जैनागमनिधि सरक्षक, देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण*–(जिन्होने क्षत-विक्षत आगमोको चिरकाल पर्यत स्थायी स्वरूप प्रदान हेतु श्रुतज्ञानको पुस्तकारूढ करके और करवाके भव्य साहित्यिक योगदान दिया), *सरस्वती कठाभरण श्रीमद सिद्धसेन दिवाकर सुरीश्वरजी*–(जिन्होने बत्तीस 'द्वात्रिशिकाये', 'सन्मति तर्क', श्री कल्याण मदिर स्तोत्र' आदि अनेक विद्वद्‌भोग्य साहित्यिक कृतियोकी रचना की), *श्री मानतुग सूरीश्वरजी म*–(जिन्होने श्रीभक्तामर स्तोत्र, मुक्तिमंदिर, श्रीनमिऊण (भयहर) स्तोत्र आदि मत्रगर्भित-विशिष्ट काव्य-लक्षण युक्त रचनाये की), *श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी*–(जिन्होने विभिन्न विषयक १४४४ ग्रन्थोकी रचना करके अपना पाडित्य एव प्रभुत्व सिद्ध किया है), *नवागी टीकाकार श्रीअभयदेव सूरि*–(जिन्होने आगमोके नव अग-उपाग आगमादिकी वृत्तियाँ-टीका, श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीके ग्रन्थोकी टीकाये, प्रज्ञापना तृतीयपद सग्रहणी, जयतिहुअण स्तोत्र, पच निर्ग्रंथी प्रकरणादि एवं छ कर्मग्रन्थ सवृत्तिभाष्यादि ग्रन्थोकी रचना की), *कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचद्राचार्य*-(जिन्होने विविध ग्रन्थ स्थित सार्ध तीन कोटि श्लोक प्रमाण साहित्यकी रचना की), *श्री आर्यरक्षितसूरिजी*-(जिन्होने अगों-पागके मूल आगम ग्रथोका विश्लेषण करके द्रव्यादि अनुयोग चतुष्टयकी व्यवस्था की, जिसका चतुर्थ अनुयोग कथानुयोग है)। परवर्तीकालमे (मुगल शासको के समयमे) ऐसे प्रभावकोमे *जगद्‌गुरु श्रीविजयहीर सुरीश्वरजी म*, *श्रीविजय सेनसुरीश्वरजी म*, *महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म* जैसे धुरधर-महारथी-विद्वानों-सरस्वती पुत्रोंकी कलमके कमाल हमारे दृष्टिपथ पर आते है, तो *श्री आनन्दघनजी, श्रीपद्‌मविजयजी, श्री वीरविजयजी, श्रीरूपविजयजी, श्रीचिदानदजी* आदि महाकवियो जैसी भक्ति परायण हस्तियोके कलनिनादके मधुर अनुभवोसे आत्मिक परितोष प्राप्त कर सकते है । तत्पश्चात हिन्दी साहित्यके आधुनिक कालके कगार पर नजर फैलाये तो दर्शित होता है, चिहु ओरसे त्रास-पीडा-और आतकमे दबी-फसी मानसिक चेतनाओको उजागर करनेवाले एव युगकी आवश्यकतानुसार जन-जीवनमे जागृतिके बिगुल बजानेवाली सुधारक विचारधाराके प्रवाहक महापुरुष–*भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और श्रीदयानद सरस्वतीजीके समकालीन* दृढ मनोबली निश्चयात्मक लक्ष्य सिद्धि हेतु अप्रतिम अध्यवसायी, प्रकाड पाडित्य युक्त विचक्षण विद्वद्वर्य **श्री आत्मानदजी महाराजजीका विशिष्ट व्यक्तित्व** ।

जैन शासनके इतिहासको अगर वाचा प्रदान की जाय तो उसकी सरगमके सूरमे हम सुन सकते हैं पुण्यवत श्रमणवर्गके तीर्थंकर प्ररूपित सुविशुद्ध प्ररूपणाकी पहचान करानेवाली सुरीली झकार, अगर उसे दृष्टि प्राप्त हो जाय तो दर्शित होगा उस दृष्टिसे दृष्ट उन भव्यात्माओके तेजोमय अतरात्माके

सामर्थ्यसे प्रकाशित दिव्य ज्योतिका अंबार । सामान्यतः साहित्य सृजनका विशिष्ट प्रयोजन जन-मनको ज्ञान-विज्ञानके, श्रद्धा-भक्तिके और उत्तम चारित्रिक कार्य कलापोसे लाभान्वित करना होता है, जिसका स्वस्थ-स्पष्ट-सपूर्ण स्वाद हमे आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमे प्राप्त होता है । समतल षड्रस भोजन समान उनके जीवविज्ञान-आत्मविज्ञान-कर्मविज्ञान-पुद्गलादिको अनुलक्षित भौतिकविज्ञान-जड, चेतनादिके स्वभावादिके परिप्रेक्ष्यमे विकस्वर मनोविज्ञान-विश्व रचना प्ररूपित भूगोल, खगोल, भूस्तर शास्त्रादि और अतीतको उजागर करनेवाला इतिहासादि विषयक वैविध्यपूर्ण साहित्यको आस्वाद्य करनेवाले क्षुधातुर जिज्ञासुको परितृप्तिकी डकार आये बिना नही रहती ।

<u>*जैन साहित्यिक रचना शैली*</u>–जैन सस्कृतिकी आप्त परम्परानुसार - **'नामूलं लिख्यते किंचित्'**- के न्यायाधारित जो भी साहित्यिक रचनाये हुई उनमे पूर्वाचार्योके अनुग्रहको ही अग्रसर करके स्वयकी लघुता प्रकट करना ही अभीष्ट माना गया है । यही कारण है कि अन्य दर्शनोमे जो प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यके आमूल परिवर्तन दर्शित होता है, ऐसे परिवर्तनोका जैन साहित्यमे अश भी नही है - **"आज भी पूर्वापरके अनेकानेक ग्रन्थोंका वाचन-मनन करके ग्रन्थरचनाका कार्य चलता ही रहा है । हिन्दी भाषामें ऐसे निर्माण कार्य पू. श्रीआत्मारामजी महाराजने अंतिम शतकमें बड़े पैमाने पर किया ।"**

जैन साहित्य रचनाकी परपराका निरीक्षण करते हुए ज्ञात होता है कि अनादिकालीन अनत तीर्थकर भगवतोके देशना-प्रवाहको ही भ श्रीऋषभदेवसे भ श्रीमहावीर स्वामी पर्यत सभी तीर्थकरोने प्रवाहित किया । उसे श्रवण करके गणधर भगवतोने उन्हे सूत्रबद्ध किया, तत्पश्चात् शिष्य-प्रशिष्योकी अध्ययन परम्परासे उसका सरक्षण और यथोचित सस्करण हुआ अनुप्रेक्षा और स्वाध्याय द्वारा अक्षुण्ण रूपमे प्रवहमान उन विपुल ज्ञानराशिको पतितकाल प्रभावसे प्राप्त अकालादि परिबलोके कारण व्याघात पहुँचा । अध्ययन प्रक्रिया अस्तव्यस्त होनेसे वह ज्ञानराशि विस्मृत बनने लगी । अतः उसकी सुरक्षा हेतु श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजीने उस कठस्थ ज्ञानराशिको ग्रथस्थ किया । तत्पश्चात् आर्यरक्षित सूरिजीने उसे ही अधिक सरल बनाने हेतु पृथक् अनुयोग व्यवस्था की । अनेक गीतार्थ पूर्वाचार्योने उस ज्ञानराशिको अधिकाधिक स्पष्ट एव सरल बनाने हेतु उन्हीकी निर्युक्तियॉ-चूर्णियॉ-भाष्य-टीकाये आदिके रूपमे साहित्य निर्माण किया । अतः वर्तमानमे उपलब्ध जैन साहित्य अपने मूल रूपको निभाते हुए नये परिवेशमे सवर्धित-व्याख्यायित-सरलतम रूप लिये हमे प्राप्त हो रहा है । आचार्य प्रवर श्रीआत्मानदजी म ने भी अपनी साहित्यिक रचनाओमे अनेकानेक सदर्भ ग्रन्थोका आधार प्रदर्शित करते हुए उसी परम्पराका निर्वाह किया है । अतः यह स्पष्ट और स्वाभाविक ही है कि उनकी रचनाओमे पूर्वाचार्योके साहित्यका प्रभाव दृष्टिगत हो ।

आपकी रचनाओमे श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म , श्रीहेमचद्राचार्यजी म आदि पूर्वाचार्योकी रचनाका बालावबोध (अनुवाद सहित विवरण) है, तो भ श्रीऋषभदेव द्वारा प्रवर्तीत सासारिक व्यवहारोको लक्ष्य करके मनुष्यके जन्मसे मृत्यु तकके सस्कार-सोलह सस्कारोका-स्वरूपादि श्री वर्धमान सूरि कृत 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित विवरण जनहितार्थ किया गया है । वेद चतुष्टय एव मनुस्मृति-महाभारत-उपनिषद-पुराणादिकी एकान्तिक प्ररूपणाये, हिंसक या वैषयिक प्ररूपणाये आदिका, ईश्वर जगतकर्तृत्वका आदि अनेक तथ्योका खडन-मडनात्मक फिरभी रसात्मक साहित्यिक शैलीमे विश्लेषण किया है । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीम एव महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म सदृश नय-प्रमाणोकी तर्कबद्धता और परमतवादियोका सैद्धान्तिक खडन एव स्वमतका मडन दृष्टि गोचर होता है। उसी प्रकार उनकी पद्यरचनाओमे पद-स्तवन-सज्झायादि काव्य प्रकारो मे श्रीआनन्दघनजी म एव श्रीचिदानदजी म आदिकी यौगिक मस्ती है, तो तुलसी आदिका सम्पूर्ण समर्पण भाव छलकता है । वैसे ही पूजादि काव्यशैली मे प श्रीवीरविजयजी म आदिके समान भक्तिभाव (द्रव्यभक्तिके साथ भावभक्तिका तुल्य सामजस्य) निखर आया है। यहाँ अब उन सभी महानुभावोके परिप्रेक्ष्यमे आचार्य प्रवर श्रीआत्मानदजी म के व्यक्तित्व और कृतित्वका परिशीलन करवानेका प्रयास किया जा रहा है।

सूरि पुरंदर श्रीं हरिभद्रजी म.सा. और सूरि सम्राट श्री आत्मानंदजी म.सा.—

उदार दिल, शिशु सम सरल, विनम्र, ज्ञानोपासनाकी प्राणवान प्रतिमा और जीवत-जगम ज्ञानपीठ, जिनशासन प्रभावक-प्रखरवादी-समर्थ टीकाकार-उत्तमोत्तम १४४४ तेजस्वी ग्रन्थरत्नोके प्रणेता, महत्तरा याकिनी सूनु श्रीमद् हरिभद्र सुरीश्वरजी महाराजा जीवनकी पूर्वाव- ामे चित्रकूट नरेश-'जितारि'के मान्य राजपुरोहित थे, जिनका चौदह ब्राह्मण-विद्याओं पर पूर्ण आधिपत्य था ।' शास्त्र विशारदोके साथ शास्त्रार्थ करनेकी सदैव तत्परता और किसी भी तत्व-पदार्थकी अनभिज्ञताको दूर करनेकी तीव्र जिज्ञासा-वृत्तिवाले, सत्यके उपासक उस पुराण-पारगत एव वेदज्ञ पडितकी प्रतिज्ञा थी कि, 'स्वयकी सर्वज्ञ-तुल्य प्रातिभ-बुद्धिके परिघसे बाहर अगर कोई शब्दावली-वाक्य या श्लोकका अर्थ निकल आये तव उस प्रतापी प्राज्ञसे उसको जिज्ञासु भावसे समझकर उसका शिष्यत्व स्वीकार करेगे ।' इस प्रतिज्ञाने ही उन्हे जिनशासनका पल्ला पकडा दिया और अत्युत्तमोत्तम आगमशास्त्रोके अध्येता बनाकर समर्थ साहित्य सर्जनके काबिल बना दिया । वैसे तो जिनशासनमे विभिन्न समयमे होनेवाले 'हरिभद्र'-ऐसे समान अभिधा सूचक आठ आचार्य भगवतोका निर्देश मिलता है, लेकिन यहाँ हमे 'भवविरह' या 'विरहाक' तखल्लुसके साथ प्रसिद्ध या 'महत्तरा याकिनी सूनु' उपनामवाले हरिभद्र सूरिजी ही अभिप्रेत है । -यथा-

"जो इच्छइ भवविरहं, 'भवविरहं' को न वंदए सुयणो ?"

जैनधर्मके पूर्व और उत्तरकालीन इतिहासके सीमास्तभ-विद्वद्वर्य श्री हरिभद्रजी भट्ट 'पिर्वगुई' नामक ब्रह्मपुरीके निवासी पिता-शकरजी भट्ट और माता-गगाके अपत्य, विद्याधर कुल-तिलकायमान श्री जिनदत्तसूरि (गच्छनायक श्रीजिनभद्रसूरि)के शासन प्रभावक शिष्य, और हस परमहस (अथवा कथावलीके अनुसार जिनभद्र और वीरभद्र) जैसे उत्तम शिष्योके गुरु थे ।" (जीनवकाल-वि स ७५७ से ८२७) उन्होने की हुई गुप्त प्रतिज्ञाके पालनके लिए जैन श्रमणत्व स्वीकार करके स्व-पर कल्याणके अनेक कार्य किये, जिनमे साहित्य सृजनाका योगदान एक विशिष्ट प्रभाव छोड जाता है । इस साहित्य सृजनकी पार्श्वभूमिमे बडा दर्दनाक 'अहिसा परमोधर्म'के सार्थक्यको सिद्ध करनेवाला-गुरु द्वारा करुणार्द्र प्रतिबोध-क्षमाके साथ प्रायश्चित प्रदान करनेवाली जैन परिपाटी और सर्व दर्शनोमे जैनदर्शनकी श्रेष्ठताको प्रमाणित करनेवाला--उनके प्रिय शिष्य हस और परमहसके बलिदान, बौद्धोको वादमे जीतकर उनके नाशका सकल्प एव गुरु श्रीजिनदत्त सूरि म द्वारा यथावसर-यथोचित सारण-वारणादि करके हरिभद्र सुरीश्वरजी म की मोहतद्राको तोडकर प्रायश्चित्तके रूपमे १४४४ ग्रन्थ सृजनके प्रायश्चित्तको प्रदान करनेवाला वाकया जुडा हुआ है ।

<u>सत्योपासनाके राही</u>--महापुरुषोमे एक अपूर्व कल्पकत्व होता है, जिसके सहारे वे स्वयको अनन्तता और सत्यके घनिष्ठ संपर्कमे जोड सकते हैं । क्षुल्लक तथ्योमे भी प्रच्छन्न रहे हुए गूढ भेदोको भी वे अनूठी कल्पना शक्तिके बलपर नूतन ढ- ग सोच सकते है । सत्यके उपासक और गवेषक--दोनो तेजस्वी रत्न इसी महान गुणके कारण प्रभावक कोटिमे स्वयको रख सके हैं । सूरि-पुरदर श्रीहरिभद्रजी और सूरि-सम्राट श्रीआत्मानदजी--दोनो जैनेतर जाति और कुलके वशज थे-एक थे राजपुरोहित और दूसरे थे ब्रह्म क्षत्रिय--दोनोके वशगत कार्यक्षेत्र भिन्न थे, लेकिन सत्योपासना गुणाश्रयी दोनोमे अभिन्नता थी । दोनोंही सत्यके शोधक-सत्यके उपासक-सत्यके सरक्षक थे । सत्यके राहपर सर्वस्व न्यौछावर करनेमे शूरवीर थे। श्रीहरिभद्रजीने जैन साध्वीवर्याके मुखसे पठित गाथा श्रवण की ।-

"चक्की दुगं हरि पणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की ।
केसव चक्की केसव, दु चक्की केसी च चक्की य ।।"

बारबार उच्चरित उस गाथाके मर्मको, एडि-चोटीका जोर लगाने पर भी न समझ सके । अत अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे समझानेवाले जैन श्रमण गुरुका शिष्यत्व अगीकार करके सत्योपासनाका ज्वलत उदाहरण छोड गये । (जो बात समझमे न आये उसे काल्पनिक-गप्प या मिथ्या ठहरा देना अथवा प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित लेकिन केवली-प्ररूपित तत्त्वको अन्य प्रकारके आक्षेपोसे मढ देनेवाले थोथे विद्वानोके लिए ऐसी सत्योपासना और साहसिकता अनुमोदनीय और अनुकरणीय है ।)

ठीक उसी प्रकार श्री आत्मानदजी म ने भी सत्य गवेषणामे न जाने कहाँ कहाँ-पजाबसे आग्रा तक-पैदल पर्यटन किया, व्याकरण-काव्य-कोष-न्यायादिका विशद अध्ययन किया; अनेक विद्वानोसे-विशेषत श्रीरत्नचद्रजी म से-सपर्क करके विचार विमर्श किया और स्थानकवासी मतको 'मिथ्या' सिद्ध होते ही उसे त्याग दिया साथ ही अन्य भव्यात्माओको उसकी त्याज्यता समझा कर उनका भी उद्धार किया । एकने राजसी ठाठबाठ-राजसन्मान और राज-पुरोहित जैसा प्रतिष्ठित पद-गृह और परिवारादिका उत्सर्ग किया तो एकने सम्प्रदायगत आदरणीय वात्सल्य, पाडित्य युक्त प्रतिष्ठित सम्मान, प्रिय गुर्वादिकी स्नेह युक्त निश्राको जलाजलि देकर और भावि विघ्नोका निरादर करके मूर्तिपूजक श्वेताम्बर सवेगी साधु जीवन अपनाया । गुणानुराग -जब राजपुरोहित श्रीहरिभद्रजीकी राहमे उन्मत्त हाथी दनादन भागता हुआ आ रहा था-लोगोमे भाग दौड मच गयी थी तब ये **"हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरे"** इस लोकोक्तिमे श्रद्धावान पडितजी भी प्राणरक्षाको प्रमुखता देते हुए जैनमदिरमे ही घूस गये वहाँ श्री जिनेश्वर देवकी प्रतिमाको देखकर उपहास हेतु श्लोक बनाकर गाने लगे कि- **"वपुरेव तवाचष्टे स्पष्ट मिष्टान्न भोजनम्"** वे ही हरिभद्र विवेक-चक्षुके उद्घाटित होते ही, जैन साध्वीजीसे श्रवण किये श्लोकके स्पष्ट अर्थघटन हेतु आचार्यश्रीजीके पास-जैन उपाश्रयमे जाते समय उसी जिनमदिरमे पुनः प्रवेश करते है, तब वह श्रीजिनबिम्बके दर्शन होते ही नतमस्तक होकर गाने लगे- **"वपुरेव तवाचष्टे भगवन्** ! वीतरागताम् !" अत स्पष्ट है कि अज्ञानवश किये हुए अपराधके लिए भी उन्होने क्षमाप्रार्थना करके गलती सुधारनेमे सकोचका अनुभव नहीं किया । इतना ही नही, जैनाचार्यके गौरववत पदासीन होनेके पश्चात् भी शिष्य मोहके जालमे फसकर बौद्धोके साथ वाद करके उन्हे परास्त करके उनके सहारके लिए उद्यत हुएको जब गुरु म सत्पथ प्रदर्शित करते है तब भी उनके चरणोमे शिशु सदृश सरलतासे क्षमायाचना करनेमे झिझकते नही है । देव-गुरु और धर्मके प्रति भी कैसी गुणानुसंगिता । श्री जिनशासनकी प्राप्ति करवानेमे निमित्तभूत महत्तराजीको निरतर याद करते हुए अपना परिचय 'महत्तरा याकिनी सूनु'के रूपमें देनेमे गौरवका अनुभव करते है । श्री जिनागमोके प्रति अपनी सन्निष्ठता प्रकट करते हुए लिखते हैं-"हा ! **अणाहा कहं हुंता, जइ ण हुंतो जिनागमो** !"

वैसे ही पूर्वावस्थाके ढूंढक साधु-मूर्तिपूजाके तीव्र विरोधी श्रीआत्मानदजी म सा भी गुणानुरागिता और गुणग्राहिताके कारण मूर्तिपूजाकी सत् सत्यताका प्रमाण पाते ही मूर्तिपूजाका मडन करनेमे एव उस वक्त भावुक भक्त समक्ष स्वकी पूर्वकी भ्रामक धारणाओको उद्घाटित करनेमे भी कभी क्षोभित नही हुए ।

श्रीहरिभद्रजीके पास परम्परागत वैदिक दर्शनका पांडित्य-विरासतमे प्राप्त सपत्ति थी, जबकि श्रीआत्मारामजीकी पैतृक सपत्ति थी क्षात्रतेजयुक्त साहसिकता व पराक्रम एव आगमिक प्राज्ञताकी प्राप्तिको हेतुभूत थे तीव्रमेधासे किया गया अध्ययन और अनुशीलन । दोनो ही, सविज्ञ मुनि जीवन ग्रहण करनेके पश्चात् अपने पूर्वगत पाडित्य-शास्त्रविशारदता-विद्वत्ताको पुण्यहीन मूर्खोके मिथ्याभ्रम ही मानने लगे थे क्योकि दोनो की विचारधारा एकान्तिकताकी कूपमडूकतासे निकल कर स्याद्वादी समुद्रकी सतह पर नर्तन कर रही थी । श्रीहरिभद्रजीको जैनधर्मकी अत्युत्कृष्टतम त्रिविध-त्रिविध अहिंसा पालन, अनन्य-विशिष्ट विरतिधर्म, महान विवेकयुक्त-गभीर रहस्यमय-अध्यात्मसे परिपूर्ण प्रतिक्रमणादि योगानुष्ठान, पचाचार पालनकी अद्भूत विशिष्टता और उसके पालनमे स्खलना पात्रको योग्य प्रायश्चित्तसे शुद्धिका विस्तृत विश्लेषण, परमात्माका अलौकिक भव्यतम स्वरूप, अष्टकर्मका महाविज्ञान आत्मिक उत्थानके लिए चौदह गुणस्थानकोकी श्रेणियाँ, स्याद्वाद-अनेकान्तवादादि अपूर्व आगमिक सिद्धान्तो और उसकी प्ररूपणाके पूर्वापर अविरुद्ध टकशाली वचन, चारित्रिक एव आत्मिक पराक्रमी पूर्व महापुरुषोका गुण-वैभववान इतिहास, अनुपमेय तीर्थधाम—आदिको प्राप्त करके अहोभावपूर्ण धन्यताका अनुभव हो रहा था । तो ढूढक मतको परित्यागकर्ता श्रीमद् आत्मारामजी म सा द्रव्य और भावभक्ति युक्त पूजा विधान, परमात्माकी प्रशमरससे शोभित-वीतरागताकी प्रतिमूर्तिके अवलम्बन युक्त सालबन आत्मध्यान, जिन प्रतिमा और जिनागमोकी अविच्छिन्न परम्परा और पवित्रता-भव्य प्राचीनता

और तारक तत्त्वज्ञान-जिनोपदिष्ट शुद्ध क्रिया, प्रविधियॉं और अनुष्ठानादिको देखकर मचल गये थे । श्री शत्रुंजय (पालीताना) तीर्थाधिराज श्री आदिश्वरजीकी अनुपमेय, जाज्वल्यमान, तेजस्वी प्रतिमाके प्रथम दर्शनसे ही उनकी अतरात्मासे आनदोदधि बहने लगा-जिसमे निश्चयात्मक निश्चलता थी-"**अब तो पार भये हम साधो, श्री सिद्धाचल दर्श करी रे ....**"

दोनो विद्वत्ताके साथ विनय-विवेककी मूर्ति थे । दोनो ही जन्मसे जैनेतर होने परभी उन सूरि-पुगवोद्वारा जिनशासनकी महती प्रभावना हुई । उनके समयमे जिनशासनका सूर्य पूर्णरूपेण-देदीप्यमान बनकर धर्मजगतको प्रकाशित कर रहा था । दोनोने तत्कालीन वादियोको आगमिक एव सैद्धान्तिक प्रमाणोके आधार पर अकाट्य तार्किक शक्तिसे जीतकर जिनशासनको गौरवान्वित बनाया था । श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म सा ने जिस वादशक्तिसे बौद्ध राजाको अभिभूत करते हुए प्रतिबोधित करके जैनधर्मी बनाया वैसी ही अजेयवादिताके बलसे श्री आत्मानदजी म सा ने बीकानेर दरवार, लिम्बडीके राजा, आर्यसमाजी मतमे दृढ आस्थावान् जोधपुर नरेश और उनके भाई आदिको एव अन्य अनेक जैनेतर कौमोके सदस्योको जैन-जैनेतर धर्मशास्त्रोके सदर्भयुक्त चर्चासे प्रभावित किया था । दोनोकी साहित्यिक प्रतिभाको प्रकटकर्ता परवर्तीयो द्वारा अनुमोदनीय पुष्प परागका परिमल सर्वत्र प्रसारित हुआ है - यथा-

"भद्दं सिरि हरि भद्दस्स, सूरिणो जस्स भुवण रंगम्मि ।
वाणी विसट्ट रस-भाव-मंथरा नच्चाए सुइरं ।।"[१०]
"यथास्थितार्हन्मतवस्तुवेदिने, निराकृताशेष विपक्षवादिने ।
विदग्धमध्यास्थनृमूढताऽरये, नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्र सूरये ।।"-मुनि यक्षदेव
"येषां गिरं समुपजीव्य सुसिद्ध विद्यामस्मीन् सुखेन गहनेऽपि पथि प्रवृत्तः ।"[११]

श्रीआत्मानदजी म की भी देश-विदेशके जैन-जैनेतर विद्वानो द्वारा की गई प्रशस्तियॉं इस शोध प्रबन्धमे अन्यत्र स्थान-स्थान पर उद्धृत की गई है, अत पुनरावृत्ति उचित नही ।

<u>आचार्यद्वयकी विषम विलक्षणताये</u>—उपरोक्त अनेक समस्याओके साथ दोनोकी कुछ वैषम्य विशिष्टताये भी दृष्टव्य हैं । (१) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा एकान्तवादी-जैनेतर (वैदिक) दर्शनके पक्षपाती होनेसे जैनधर्म-जैनोके विरोधी थे और श्रीआत्मारामजी लौका-लवजी द्वारा प्रवर्तीत जैनाभास मतमे दीक्षित, प्रतिमा-पूजनके विरोधी थे (२) अन्योको पाडित्यसे पराजित करनेवाले श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म को शिष्योके कारण प्रकर्ष प्रकोप भावने परास्त करके भयकर मानसिक हिसा करनेमे प्रवृत्त किया, जबकि श्रीआत्मानदजी म सा ने क्रोधादि कषायोको क्लान्त कर दिया था, अत आभ्यन्तर शत्रुजय आचार्यश्री कैसे भी विकट कष्ट-परिषद-उपसर्ग आने पर भी क्षमा-ढालसे सम्यक् रूपसे सह लेते थे । **"तेओश्रीना आत्मामां कोई दिवस उग्रता के क्रोध विगेरेनी रेखा पण देखाती न हती ।"**[१२] (३) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा का साहित्य सस्कृत और प्राकृतमे रचा गया है और श्रीआत्मानदजी म सा ने अपना साहित्य तत्कालीन लोकभाषा हिन्दीमे प्रस्तुत किया हैं । (४) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा ने शिष्य सततिकी मृत्युके शोक निवारण हेतु ज्ञान (ग्रन्थ) सततिको प्रधानता दी और विक्रम साहित्य सृजन करके अमर सतति निर्माण द्वारा स्व पर कल्याण किया, जबकि श्रीआत्मानदजी म सा ने साहित्य सतति और विशाल शिष्य समुदाय-दोनोके सहयोगसे युग परिवर्तनकारी सीमातीत समाज सेवा की, जिनमे स्व-पर कल्याण भावना निहित ही थी। (५) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा ने आगम शास्त्रो पर वृत्तियॉं रची हैं जिनमे अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र, जीवाजीवाभिगमसूत्र दसवैकालिक सूत्र, नदीसूत्र, पिंडनिर्युक्ति, प्रज्ञापना सूत्र आदि मुख्य है। श्रीआत्मानदजी म सा ने पूर्वाचार्य रचित ग्रन्थो पर बालावबोध लिखे हैं जिनमे 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थान्तर्गत श्रीहरिभद्र सूरि कृत 'लोकतत्त्वनिर्णय' श्रीहेमचद्राचार्य विरचित 'महादेव स्तोत्र' और 'वीर द्वात्रिंशिका याने अयोग व्यवच्छेद' आदि प्रमुख रूपसे हैं ।

<u>साहित्यविदोके साहित्यका निरीक्षण</u>—'षोडशक प्रकरण-सद्धर्म देशना' ई स १९७९-ग्रन्थ की श्री हीरालाल कापडिया

लिखित प्रस्तावनानुसार १४४४ ग्रन्थके रचयिता-विक्रम साहित्य सर्जक श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीके १०२ मान्य **ग्रन्थके नाम अद्यावधि प्राप्त हुए हैं, जिनमें** उनके द्वारा दी गई **टिप्पणी** अनुसार **कई ग्रन्थोंकी विशेष** जानकारी **प्राप्तव्य हैं** और कई **ग्रन्थ अभी** अनिर्णित अवस्थामें **हैं** । अत उन्होने 'समरादित्य महाकथा'के गुर्जरानुवाद, अनुवादक आ श्री हेमसागर सूरिजी, ई स १९६६-के ग्रन्थके पुरोवचनमे इस महान साहित्यकारकी **पचास अधिकृत कृतियोका** जिक्र **किया है, जिनमे आठ आगमिक साहित्य विषयक और शेष** अनागमिक (स्वतत्र रचना, वृत्ति, टीका या अवचूरिके **रूपमे**) प्रकरण **स्वरूप** कृतियोके नामोल्लेख किये **हैं** । श्रीहरिभद्र सूरिजीके साहित्य पर प्रकाश डालते हुए श्रीविजय भुवनभानु सूरि म के उद्गार अनुशीलनीय है **"उन्होंने जिनागम शास्त्रोंका अध्ययन करके ऐसे एकसे बढ़कर एक शास्त्रोका निर्माण किया है, कि, अगर आज वे सर्व शास्त्र लभ्य होते तो हम केवल उनके ही शास्त्र साहित्यसे ज्ञानार्णव बन जाते ! वर्तमानमें उपलब्ध शास्त्र है, वे भी उन्हें महापुरुषकी विरल विभूतिकी कक्षामें रखनेके काबिल हैं .... उनके मौलिक शास्त्र रचनाके अतिरिक्त आगम विवेचनाके वचन भी टंकशाली-प्रभावशाली माने जाते हैं, अतः उनके वचनोंका परवर्तियोंने संदर्भके रूपमें उपयोग किया है ।"**[13]

इस प्रकार श्री आत्मानदजी म सा ने भी जो साहित्यिक रचनाये की, उनके लिए *सूरिशतक काव्य*-१३ मे लिखा है - **"उपदेश ही देते न थे, वे ग्रन्थकर्ता भी रहे ।**

भर्ता रहे बुध वृन्दके, त्रयताप हर्ता भी रहे ।।"

इनकी रचनाओमे खडन-मडनात्मक शैली प्रयोग प्राप्त होते है, जिसमे वाद-प्रतिवादके तर्कमे उग्रता भी झलकती है । वादीके तर्कको तोड-मरोडकर फैक देनेमे मस्त शूरवीरकी अहिंसक तर्कशक्ति परमतवादीके साथ समभाव और सौजन्यपूर्ण व्यवहार-वर्तनकी झॉकि दिखाकर उदार सत्याग्रहीकी सामर्थ्यका परिचय दिखा जाती है । वे लिखते है-**"परतीर्थियोंके साथ उचित व्यवहार करें, उनको उचित दान दें, उनका मान-सम्मान करें । परमतवाला किसी कष्टमें पड़ा हों, तब उसका उद्धार करें और उसके उचित-आवश्यक कार्यको पूरा कर देवें ।"**[13A]

उनके पद्योके विषयमे मोतीचदजी कापडियाका मतव्य हैं, **"उनके पद्योमें असाधारण वाक्य रचना शक्ति-साहजिक (प्राकृतिक) सरलता, मधुर उन्माद, आंतरवेदना और साध्य सामीप्य छलकते है जिससे कही पर भी लघु पार्थिवता या रसक्षति रूप अधोगामित्व आने नहीं पाया ।"**[14]

श्री आत्मानदजीके ग्रन्थ प्राय स्वतत्र रचना रूप ही हैं । 'लोकतत्त्व निर्णय', 'महादेव स्तोत्र', और 'द्वात्रिंशिका' के बालावबोध एव 'गायत्रीमत्र' का सार्थ विवेचनादि उनके 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थान्तर्गत तथा 'ध्यान शतक' आधारित कुछ-सवैया इकतीसा-छदमे लिखे गये पद्य उनके 'बृहत् नवतत्त्व सग्रह' ग्रन्थान्तर्गत लिखे गये हैं, अर्थात् ये रचनाये भी उनके स्वतत्र ग्रन्थके एक अध्याय या प्रकरणके रूपमे हैं । इन रचनाओमे तेरह कृतियॉ गद्यमे और सात रचनायें--(पूजा-प्रकारकी) एव अन्य पद-स्तवन-सज्झायादि फूटकल रचनाये पद्यमे है । इनके अतिरिक्त 'सन्मति तर्क' आदि अनेक न्याय विषयक एव अन्य प्राचीन ग्रन्थोके सशोधन भी उन्होने किये है, कई ग्रन्थोकी प्रतिलिपियॉ करवायी--ये सारा साहित्य उनके ज्ञानभडारोमे सुरक्षित था जो आज भी श्री विजयवल्लभ शिक्षणनिधि-दिल्हीमे सुरक्षित रखा गया है ।

दोनो मुनिपुगवोके ग्रन्थोके प्रतिपादित विषय पूर्णत धार्मिक और दार्शनिक ही हैं । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा की भाषा शैली, विद्वद्भोग्य, सूत्रशैली (समासशैली) युक्त है, जबकि श्रीआत्मानदजी म सा ने इस क्लिष्ट और नीरस विषयको अत्यन्त सरल-सुबोध और बुद्धिगम्य शैलीमे प्ररूपित करके इसे सहज-बालमानस युक्त बना दिया है ।-यथा-'ललित विस्तरा' ग्रन्थमे 'शक्रस्तव' सूत्रके 'जिअभयाण' पदकी विशिष्ट व्याखा करते हुए श्रीहरिभद्रसूरि म लिखते हैं - **तत्र हि क्षेत्रज्ञाः परम ब्रह्मविस्फुर्लिंगकल्पाः, तेषा च ततः पृथग्भावे न ब्रह्मसत्तात् एव कश्चिदपरो हेतुरिति सा तल्लयेऽपि तथाविधैव । तद्वदेव भूयः पृथक्त्वापत्तिः। एवं हि भूयो भवभावेन न सर्वथा जितभयत्वम् । सहज भवभाव व्यवच्छित्तौ तु तत्तत्स्वभावतया भवत्युक्तवत् शक्तिरूपेणापि**

सर्वथा भयपरिक्षय इति निरूपचरितमेतत्।"

यहाँ अद्वैतमतवादियोकी मान्य मुक्ति (परम ब्रह्ममे लयत्व) का खडन करके मोक्ष स्वरूपकी तात्विकताका विश्लेषण किया गया है । उसी **अद्वैतवादियोकी मुक्तिके** विषयमे श्रीआत्मानदजी म सा द्वारा की गई प्ररूपणा दृष्टव्य है-**"परब्रह्म, सब दोष और गुणोंसे रहित मोक्ष स्वरूप है । ..... तथा फेर दयानंदजी लिखते है, मुक्तिस्थान परमेश्वर ही है अन्य कोई मुक्तिस्थान नहीं है । जैसे आकाश सर्वव्यापी है तैसे ही ईश्वर मुक्तिस्थान रूप सर्व जगें व्यापक है, तिसमें मुक्त लोग स्वच्छंदतासे चलते-उडते फिरते है, तो हम पूछते हैं कि मुक्तलोग सर्वकाममसे पूर्ण हैं तो उनको देश-देशांतर जानेसे क्या प्रयोनन ?"**

इस प्रकार दोनोकी लेखन शैलीके वैषम्यका प्रमुख कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ है । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा का समय ही विद्वत्ता और पाडित्यका था जबकि श्रीआत्मानदजी म सा के समयका साहित्य जनसामान्यका प्रतिनिधित्व करता था, अत श्री हरिभद्रजी म की रचनाये तत्कालीन विद्वानोकी प्राज्ञताकी कसौटी बन सकी थी और श्रीआत्मानदजीकी कृतियाँ भी लोकभोग्य होनेसे अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी है । श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म सा के साहित्यमे आगमिक, न्याय विषयक, तात्त्विक, यौगिक, आचार प्ररूपक, उपदेश प्रधान, भक्तिप्रस्क, कथा साहित्य और अन्य प्रकीर्णक प्रकरणादि विभिन्न साहित्यिक विधाओके दर्शन होते हैं, जबकि श्रीआत्मानदजी म की कृतियोमे भी आगमिक, न्याय विषयक (तत्कालीन मिथ्यामतोका युक्तियुक्त-नय प्रमाणाधारित तर्कबद्ध खडन-मडन निरूपण), ऐतिहासिक, खगोलिक, भौगोलिक, भूस्तरशास्त्रीय, विश्व-स्तरीय जीवविज्ञान-कर्मविज्ञान, गुणस्थानक (श्रेणियॉ) आदिके स्वरूप, ध्यान विषयक, आचार विषयक अनेक प्ररूपणाये वर्तमान युगकी अपेक्षासे वर्णित है । श्रीआत्मानदजीके साहित्यमे तत्कालीन समाजकी आवश्यकतानुसार जीवोपयोगी और जीवनोपयोगी तत्त्व और पदार्थोका प्ररूपण ही प्रमुखत हुआ है अत कथासाहित्यका अवतरण नही हुआ । यद्यपि उनके प्रवचनोमे उन विषयोको सरलतासे प्रस्तुत करने हेतु अनेक कथाओका उल्लेख होता था, जो उनके पद्यबद्ध पूजा साहित्यसे विदित होता है ।

(१) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म के 'धर्मसग्रहणी' ग्रन्थमे भव्य वाद-प्रतिवाद (सवादशैली) द्वारा जिनमतकी विशिष्टता, सर्वांग सम्पूर्णता और सर्वथा शुद्धताका निरूपण हुआ है, वैसे ही श्री जिनमत प्ररूपणाका मडन श्रीआत्मानदजी म के 'अज्ञान तिमिर भास्कर', 'सम्यक्त्व शल्योद्धार', 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' आदि ग्रन्थोमे वेदादिके संदर्भसे अभेद्य तर्कबद्धतासे किया गया है । (२) श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीके 'उपदेशपद'मे जिनाज्ञा और गुर्वाज्ञाका महत्त्व, भवनिर्वेद, मोक्षाभिलाषा-आदिकी, और 'पञ्चवस्तुक'मे साधु जीवनकी योग्यता-उत्सर्ग, अपवाद मार्ग-साधुचर्या-आदिका, एव 'अष्टक'मे सुदेव-सुगुरु-सुधर्म योग्य विविध बत्तीस विषयोका वर्णन बत्तीस अष्टकोमे किया गया है । इन विषयोका प्राय वैसा ही स्वरूप श्री आत्मानदजी म सा के 'जैन तत्त्वादर्श', 'तत्त्व निर्णय प्रासाद', 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' आदि ग्रन्थोमे हमे प्राप्त होता है । (३) 'षोडशक'मे प्रणिधानादि पाच अग और जिनबिम्ब-निर्माण एव प्रतिष्ठापनादिके विधान तथा विंशति विंशिकामे लोकधर्मसे मोक्षपर्यंत मार्गमे आत्म सशोधनके राहका निरूपण, 'पचाशक'मे सम्यक्त्व-बारहव्रत-द्रव्य और भावस्तव एव श्रावकके दैनदिन जीवन व्यवहार, 'धर्मबिन्दु'मे गृहस्थके सामान्य और विशेष धर्म व साधुके सापेक्ष और निरपेक्ष यतिधर्म, आत्म साधनाका क्रमिक मार्गादिका जैसा वर्णन और विश्लेषण किया है, ठीक उसी प्रकार पूर्वाचार्योंके ग्रन्थाधारित श्रीआत्मानदजी म ने भी जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व निर्णय प्रासाद, जैनधर्मका स्वरूपादिमे किया है । अनेकान्तजयपताका, षड्दर्शन समुच्चय, अनेकान्तवाद प्रवेश, लोकतत्त्व निर्णय जैसी कृतियोमे प्ररूपित न्याय विषयक सैद्धान्तिक प्ररूपणाओका व्यवहार रूप हमे श्रीआत्मानदजीकी वादिभजक शैलीमे 'अज्ञान तिमिर भास्कर', 'चिकागो प्रश्नोत्तर' आदिमे प्राप्त होता है । साथ ही 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थान्तर्गत चतुर्थ एव पचम स्तम्भमे 'लोकतत्त्व निर्णय'का बालावबोध प्रस्तुत करके श्रीहरिभद्रजीके चरण चिह्नो पर चलनेवाले अनुगामीके रूपमे स्वयको सिद्ध किया है । महत्तरा याकिनी सूनुके 'ललित विस्तरा'मे निरूपित अरिहत स्वरूपके दर्शन और साख्य-वैदिक-बौद्धादि एकान्तिक दर्शनोके खडनका भास

हमे श्रीआत्मानदजीम के 'जैन तत्त्वादर्श' ग्रन्थके द्वितीय परिच्छदमे प्राप्त होता है ।

साहित्यमनीषी श्रीहरिभद्र सुरीश्वजी म सा.का वैविध्यपूर्ण-अजीबोगरीब-प्रातिभ पाडित्यपूर्ण-विलक्षण वाड्मयके सामने श्रीआत्मानदजीका साहित्य परिमाणापेक्षया बाल सदृश भासित होता है, लेकिन, शेरका बच्चा श ही होता है–वैसे ही गुण समृद्धिमे श्री आत्मानदजी म सा , श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म सा के अनुज या अपत्यके रूपमे हमे प्रत्यक्ष होते हैं ।

महामहोपाध्य श्रीमद् यशोविजयजी म.सा. और संविग्न आद्याचार्य श्रीमद् आत्मानंदजी म.सा.:—

<u>परिचय</u>–इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठोसे बहता कलकल निनाद और हमारे कर्णपटलको आकृष्ट करनेवाले ये मधुर-मजुल स्वरगान है महामहोपाध्याय श्रीमद यशोविजयजी म सा के, वाग्देवी श्रीसरस्वतीकी श्रेष्ठ प्रसादी और शुद्ध साधुता अर्थात् ज्ञान और क्रियाके सुभग समन्वयी सगीतका । सामान्यत विशेषणसे विशेष्य (व्यक्ति) की विशिष्टताका उभार होता है, लेकिन, श्रीयशोविजयजी म के लिए जैसे विशेष्यसे विशेषणकी विलक्षणता छलकती है । विशेषण है 'उपाध्यायजी'–विशेष्य है श्री'यशोविजयजी' । 'उपाध्यायजी' शब्दोच्चारसे विद्वज्जगतमे श्रीयशोविजयजी म की स्मृति उठती है, मानो विशेषण विशेष्यका पर्याय-सा बन गया है । ऐसे **विरल विभूतिः** जिनशासनके **अनन्य प्रभावक** और आत्महित साधक, नम्रता और लघुलावण्यसे शोभित **ओजस्वी व्यक्तित्वधारी**, ज्ञानभक्त और गुरुभक्त, षड्दर्शनवेत्ता-महान दार्शनिक, मैथिल-तार्किक श्रीउदयन और श्रीगंगेशके द्वारा अवतारित नव्यन्यायकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणात्मक विचारधाराको जैन दर्शनमे सजानेवाले **जैन नव्यन्यायके पिता** समान आद्यविद्वान, विद्याधाम काशीकी कीर्ति-पताकाकी सुरक्षा हेतु स्याद्वाद-अनेकान्तवादका कवच धारण करके प्रखर विद्वान सन्यासीके पडकारको झेलकर उसे वादमे पराजित करते हुए, जैन दर्शन विरोधी ब्राह्मण विद्वद् पडितवर्यो द्वारा **'न्याय विशारद' बिरुद प्रापक श्रेष्ठ श्रमण;** निश्चयवादी श्री बनारसीदासजीको अकाट्य तर्कयुक्तियोसे हराकर, व्यवहार नयकी स्थापना करके श्री आग्रा सघसे उनके सिद्धान्तका बहिष्कार करवानेवाले **अनुपम तार्किक शिरोमणि न्यायाचार्य;** महोबतखानादि अहमदाबादके सर्वजनोको अवधान प्रयोगोसे प्रसन्नताके पारावारमें निमज्जन करानेवाले **सहस्त्रावधानी-असाधारण तेजस्वी धीमान;** ज्ञानप्रवाहको अमरत्व प्रदान करनेके लक्ष्यसे अल्पज्ञ-विशेषज्ञ, या साक्षर-निरक्षर, साधु या ससारीके ज्ञानार्जनकी सुलभता हेतु सस्कृत-प्राकृत, गुजराती, हिंन्दी आदि विविध भाषाओमे आगम-तत्त्वज्ञान-अनेकात, तर्क-न्याय, साहित्य-अलकार-छद, योग-अध्यात्म, चारित्र-आचार-उपदेशादि विभिन्न विषयोको खडनात्मक-मडनात्मक-समन्वयात्मक शैलीमे गद्य-पद्य-सवादादि विलक्षण वाड्मय रूप **सैंकडो ग्रन्थोंके सृजनहार**–जिनमे दो लक्ष श्लोक प्रमाण केवल न्याय विषयक सौ ग्रन्थ थे–और जिनको अहमदाबादमे श्री विजयप्रभ सुरीश्वरजी द्वारा वि स १७१८मे उपाध्याय पद प्रदान किया गया, ऐसे **महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.सा.ने** सत्रहवीशताकी निशा एव अठारहवी शतीकी उषाको अपनी अनूठी आभा और ज्ञानालोकसे अलकृत किया था । देवी सरस्वतीके उस नर अवतारके वचन टकशाली और उनके प्रमाण-वाक्य साक्षात आगमावतार । उन्हे आधुनिक युगके अनेक विषयोके Ph.D. अथवा कलिकालके श्रुतकेवली कहे तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी ।

<u>जीवनतथ्य</u> –उनके गुणानुवादको प्रकाशित करनेवाली उनकी यशपूरित अक्षरदेह जाज्वल्यमान रूपमे विद्यमान है । हॉलाकि उनका स्थूल जीवनवृत्त प्रामाणिक रूपसे प्राप्त करानेवाले माध्यमोकी अत्यल्पता अखरती है, फिर भी उनके समकालीन श्रीकान्तिविजयजी म के काव्य 'सुजस वेलिभास'-प्रमुख रूपसे सहायक बन सकता है तो थोडा-बहुत आधार महाराजा कर्णदेवका वि स १७४० के ताम्रपत्रसे मिल जाता है और शेष अभावको पूर्णता बक्षती है कुछ अनुश्रुतियॉ । वैसे तो उनके साहित्य-सृजन प्रवाहकी भी पूर्ण रूपेण प्राप्ति अद्यावधि नही हो सकी है । जितनी उपलब्ध है, वह भी अत्यल्प है । उनके अनुपलब्ध अमूल्य साहित्यके लिए सशोधन हो रहा है जो प्रशसनीय एव अनुमोदनीय है ।

ताम्रपत्रके आधार पर हम कह सकते हैं कि इनका जन्म गुजरातके पाटण शहरके पास छोटे 'कनोडा'-ग्राममें वि स १६८०मे हुआ था ।[16] भासके आधारसे इस विषयमे व्यवस्थित-विशिष्ट जानकारी

प्राप्त होती है-यथा-पिता 'नारायण श्रेष्ठि' और माता 'सौभाग दे' के जीवनोद्यानके पुडरिंक पुष्प-सम-बाल जसवंतने माता पिताके सस्कार-सुधाका पान करके, सद्गुरुओकी अमीय कृपावृष्टिमें स्नान करके और जन्मात b ज्ञानावरणीय कर्मके अद्भूत क्षयोपशमके कारण सरस्वतीके वरदानकी त्रिवेणी सगमसे पवित्र प्रखरता प्राप्त करानेवाली दिव्य दीक्षा आठ सालकी लघुवयमे ही पाटणमे स्वीकार करके वि स १६८८मे श्रीनयविजयजी म.सा का शिष्यत्व अगीकार किया । इस प्रकार विरागका चिराग प्रकट होने पर अब एक ही परिवारका प्रकाश दीप, जसवत (अनगढ पत्थर) से पावन प्रातिभ प्रतिमा बननेका सौभाग्य प्राप्त करते हुए विश्वोद्योत करनेवाले श्रीयशोविजयजी म सा के गौरवको प्राप्त हुए ।

जगद्गुरु श्री हीर सुरीश्वरजी म सा के विशद ज्ञानप्रवाहमे, उनके परवर्तीकालमे जो क्षीणता आयी थी, उसे श्रीमद् यशोविजयजी म सा ने पुन वेगवान बनाया । गभीर-सर्वतोमुखी-क्षिप्रग्राही-अलौकिक ऋतभरा प्रज्ञाके स्वामी श्रीयशोविजयजी म सा दस-बारह वर्षोमे तो गुजरातमे लब्ध विविध विषयक वाड्मयके अनेक आकर ग्रन्थराशिके पारगामी बन गये । उस ज्ञान-प्रासादके कलशरूप 'अवधान कला'की सिद्धि भी उस सरस्वती पुत्र-कुमारश्रमणने अतयल्प प्रयासमे सिद्ध कर ली । उसी ज्ञानालोक परिवेशमे थोडे परवर्तीकालकी ओर दृष्टिक्षेप करनेसे अप्रतीम मेधाके स्वामी श्रीआत्मानदजी म सा की जलहल ज्योति हमारे नेत्रयुगलको प्रकाशित करती है, जिन्होने केवल छ वर्षके दीक्षापर्यायमे ही स्थानकवासी मान्य सकलागम पारगामीत्व प्राप्त करके विद्वज्जगत्मे अपनी श्रेष्ठताको सिद्ध किया था । तत्पश्चात पॉच-छ वर्ष पर्यत उसके रहस्यको-आगमके हार्दको प्राप्त करनेके लिए उन्होने व्याकरण-न्याय षड्दर्शनादिका अभ्यास करते हुए अनेक विद्वान एव पंडितोके सपर्क करके चर्चा रूप विचार-विमर्श एव अध्ययन-मनन किया था ।

<u>दोनोकी तुल्यातुल्यता</u>-(१) श्रीयशोविजयजी म के प्रकृष्ट पुण्य प्रतापसे उनको ज्ञान-सपादनके लिए कही बाहर भटकना नही पडा था जबकि श्रीआत्मानदजीम ने दीक्षा लेनेके पश्चात् ज्ञानार्जनके लिए पजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थानादिके कोने कोनेको छान लिया था, और अत्यन्त परिश्रम पूर्वक खंत और धैर्यसे ज्ञान प्राप्ति की । (२) श्रीयशोविजयजीको नैसर्गिक रूपसे ही सत्य राहकी प्राप्ति हुई थी जबकि श्रीआत्मानदजी म को स्वयके प्रज्ञाघटमें, ज्ञानाध्ययन-मनन-चिंतन रूप रवैयेसे बिलोडन करते करते तारतम्य रूप नवनीत प्राप्त हुआ था । (३) श्रीयशोविजयजी म को कदम- कदम पर सर्वत्र-सर्वदा-गुरुदेव श्रीनयविजयजी म धनजी सूरा जैसे श्रावकादि सर्वकी ओरसे उष्मापूर्ण सहयोग अपने आप मिलता रहा, जबकि श्रीआत्मानदजी म को सर्वत्र-सर्वदा विरोधका मुकाबला करते करते आगे बढना पडा फलत श्रीयशोविजयजी म षड्दर्शनकी (न्याय शास्त्रयुक्त) सर्वोच्च शिक्षा प्राप्तिके लिए श्रीनयविजयजी म के साथ काशी और आग्रा तक पहुँच सके और अपनी बुद्धि प्रतिभाके चमकार प्रकट कर सके । जबकि, श्रीआत्मारामजी म को आग्रामे अध्ययन करवानेवाले पडितवर्य श्रीरतनचद्रजी म का योग प्राप्त हुआ, उसी वक्त उस अमूल्य लाभसे वचित होकर गुर्वाज्ञा प्राप्त होते ही विहार करना पडा जिससे ज्ञानप्राप्तिका पूर्ण रूपेण लाभ न मिल सका । (४) श्रीयशोविजयजी म के मुख्य गच्छनायक श्रीदेवसूरिजी म ने उनके गुरु श्री नयविजयजीम को उनके उत्कृष्ट जीवनकी स्वस्थ परिपालनाका आदेश दिया था, जिससे उनके ज्ञान-यज्ञको शीघ्र सफलता प्राप्त हुई जबकि श्रीआत्मानदजी म के मुख्य नायक पूज्य अमरसिहजीने उनकी विकास राहमे कदम कदम पर रोडे अटकानेका ही कार्य किया था ।

इन समस्त परिस्थितियोने श्रीआत्मारामजीकी शक्तिके योग्य विकासमे रुकावटे डाली अत योग्यता होने पर भी उनका योग्य विकास न हो सका । उनका जीवन सघर्षकी अगनज्वालाओसे घिरा रहा था। शायद वे ही अगन ज्वालाओने उनके स्वर्णिम व्यक्तित्वकी कसौटी करके उन्हे अत्यधिक शुद्धता और पवित्रताकी चमक अर्पित की । परिणाम स्वरूप सविज्ञ शाखाके ढाई सौ वर्षसे रिक्त पड़े हुए आचार्य पदके गौरवको गौरवान्वित बनानेका उत्कृष्ट लाभ तत्कालीन भारतीय जैन समाजने उन्हे दिया, जो महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजीको न मिल सका था ऐसा भी माना जाता है कि उनके समयमें एक ही आचार्य गच्छाधिपतिकी

परपरा थी ओर श्री विजयप्रभ सुरीश्वरजी म.सा उस समय आचार्यपदारूढ थे, अतः योग्यता होने पर भी उन्हें आचार्य पद प्राप्त नहीं हुआ था ।" (५) **श्री यशोविजय** जी म जन्मजात जैन थे. अत उन्हे जैनत्वके सस्कार स्वत प्राप्त थे जबकि श्रीआत्मानदजी म ब्रह्म-क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे नकी परवरिश स्थानकवासी परिवेशमे हुई, अत कठिन प्रयास और स्वबुद्धि प्रतिभाके परिपाक रूप शुद्ध सस्कार प्राप्ति हुई (६) **श्री यशोविजयजी म ने सरस्वती वरदानसे वाद–साहित्य सृजन–व्याख्यानादि क्षेत्रमे सिद्धि प्राप्त की और जिनशासनकी महती प्रभावना की जबकि इन सभीके लिए श्री आत्मानदजीम ने कर्तव्यनिष्ठा और** निरतर-कठोर-परिश्रमसे निष्पन्न स्वपुण्योदयके सामर्थ्यके सहारे स्वर्णिम सिद्धि हासिल की (७) फिर भी श्रीमद् यशोविजयजी म का शिष्य-प्रशिष्य परिवार अति विशाल नहीं था, अत उनकी सर्व सिद्ध प्रवृत्तियाँ उन तक ही सिमित रही । यहाँ तककी उनकी साहित्यिक कृतियोमेसे अधिकतर कृतियाँ वर्तमानमे समाजके दृष्टिपथसे ओझल है । जबकि श्री आत्मानदजी म सा का विशाल शिष्य परिवार द्वारा उनके देहविलय पश्चात् उनके उदात्त साहित्य सर्जनको एव उनके जीवनकार्यों रूप मिशनको उनके बाद भी कार्यान्वित रखा गया उनका परिष्कार एव परिवर्धन हुआ जिनके सुस्वादु फल अद्यावधि जैन समाजको मिल रहा है।

प्रभावकोके हृदयमे साम्यता—इन वैषम्योके साथ साथ उन दोनो महानुभावोमे जो साम्यता परिलक्षित होती है, उसका कुछ दिग्दर्शन इस प्रकार करवाया जा सकता है -(१) दोनो शासनसेवीयोने बाल्यकालमे दीक्षा लेते ही ज्ञानार्णवमे अवगाहन करना ही अपना जीवन लक्ष्य बनाया था । (२) दोनो सत्यके समर्थ समर्थक-सत्यपथके पथिक थे । सत्यके लिए दोनोने बहुत कुछ सहन किया । जिसके अतर्गत श्रीयशोविजयजी म सा ने श्रीप सत्यविजयजी गणिजीके साथ मिलकर जो क्रियोद्धारका कार्य किया वह झलकता है, तो श्रीआत्मानदजी म ने सत्यपथकी पहचान होनेके पश्चात् अपने साथियोके साथ उसी सत्यराह-सविज्ञ साधुताके साधक बननेका सौभाग्य जीवनकी अन्तिम बीसीमे प्राप्त करके जिनशासनको गौरवान्वित और उन्नत मस्तिष्क बनानेके भगीरथ प्रयत्न किये । (३) दोनोकी अद्वितीय तर्कबद्ध एव वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक व्याख्यान शैलीकी मधुर सुवासने धूम मचा दी थी; जो उनमे स्थित, पर्षदाको पागल बना देनेवाली-भुवनमोहिनी गिराका करिश्मा था । एक बार उनके प्रवचनोका अमीय पान करनेवालोके कर्णपटलको अन्यत्र कहीसे तृप्ति न होती थी । (४) दोनों ही जिनशासनकी आन थे और शान थे, जिन्होने जिनशासन सेवामे ही सर्वस्व समर्पित कर दिया था । (५) दोनो महानवादी और तार्किकशिरोमणि थे । श्रीयशोविजयजी म सा ने चर्चा सभामे विद्वान सन्यासीको परास्त किया था तो निश्चयवादी बनारसीदासजी आदिको चूप किया था, वैसे ही श्री आत्मानदजी म सा ने भी निश्चयवादी श्रीशातिसागरजी और कोरे अध्यात्मवादी हुक्ममुनि आदि अनेक जैन-जैनेतरोसे लोहा लेकर उनकी वजती वसरीको मूक किया था।

साहित्यिक तुलना—इस प्रकार उनके अनूठे व्यक्तित्वके सत्य-शिव-सुदरम सरोवर सलीलमे स्नान करके अब हम उनके साहित्य दर्पण समक्ष नजर फैलाये, जहाँ उन वाग्देवीके सपूतोकी कलम द्वारा सृजित साहित्य शृगारका असबाव आलमको भूषित कर रहा है । ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी कल्लोलिनीके कगार पर शासन प्रभावनाके थाल भरकर सर्वको आकर्षित कर रही दोनोकी मधुर लेखिनी जैन साहित्यको मुखरित कर रही है । (१) दोनोने उनमे विविध विषयक वाङ्मयके रूपमे इन्द्रधनुषी आभाको चित्रित करनेका आयास किया है, फिर भी दोनोने प्रमुखता न्यायको दी है । यही कारण है कि एक 'न्यायाचार्य' और 'न्याय विशारद' बने है तो एकको 'न्यायाम्भोनिधि' और 'स्व-पर सिद्धान्तोदधि पारगामी'की प्रख्याति प्राप्त हुई है। (२) वाचकवर्य श्रीउमास्वातिजी म , श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी म , श्रीमल्लवादी सूरिजी म , श्रीजिनभद्र क्षमाश्रमणजी म , श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म , श्रीहेमचद्राचार्यजी म आदि अपने अनेक पुरोगामी आचार्य भगवतोके प्रति दोनोने खुलकर अपनी भक्ति प्रदर्शित की है । (३) दोनोने अपने ग्रथोमे पतजलिके योगशास्त्र, और भगवद्गीता या महाभारत जैसे जैनेतर ग्रन्थोके सदर्भ प्रस्तुत करके अपनी दार्शनिक

समन्विता और अद्‌भूत पाडित्यके दर्शन करवाये हैं । (४) ये सर्वतोमुखी प्रतिभाके स्वामियोंने अपनी सृजन-सलीलामें साहित्यके योग और आचार, आगम और न्याय, धर्म और इतिहासादि नूतन-पुरातन सभी विषय-निर्झरोंको समाहित किया है । (५) हाँ, इतना अवश्य, स्पष्ट झलकता है कि, उपाध्यायजीका विशेष प्रदान गद्यापेक्षया पद्य (श्लोक बद्ध) कृतियोमे हुआ है, जबकि आचार्य प्रवरश्रीने पद्यापेक्षया गद्यमे अधिक योगदान दिया है, जिसमे विशेष हेतुभूत तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियोकी प्रभावक पृष्ठभूमिको मान सकते हैं । (६) वादकलामे और न्यायशास्त्र निर्माणमे पूर्वपक्षके स्थापनमे (इतर दर्शनकी पूर्वभूमिका प्रस्तुत करते हुए) उस पक्षकारके साथ तादात्म्य भावसे जिस भाँति श्री यशोविजयजीम सा दृष्टिपथ पर आते हैं, उतनी प्रभावकता श्रीआत्मानदजी म प्रदर्शित नही कर सके हैं । फिर भी उत्तरपक्षमे जैन दार्शनिक सिद्धान्त स्थापनके समय दोनोका पाडित्य समान रूपसे झलकता है । (७) दोनोने वेदातियो, वैशेषिको, नैयायिको, मीमासको या बौद्धो आदि सभी एकान्तवादी दर्शनोकी कडी समालोचना की है, तो उनके प्रमाणित सत्य सिद्धान्तोकी प्रशस्ति करके जैन श्रमणोकी गुणग्राहिता प्रकट की है । अतएव उनकी यह उद्‌घोषणा सर्वधर्मके प्रति विशाल एव उदार दृष्टिबिंदुको उद्‌घोषित करती प्रत्यक्ष होती है -

'पक्षपातो न मे वीरो, न द्वेषः कपिलादिषु

युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥'[१८].

अर्थात् "जैनागमोका स्वीकार और परसिद्धान्तोका इन्कार हम किसी रागद्वेषके कारण नही प्रत्युत युक्तियुक्त प्रतिपादनके बल पर करते है । अत उसमे राग-द्वेषका तनिक इगिताकार भी दृष्टिगत न होगा।" (८) श्रीयशोविजयजी म सा ने पडितजन और प्राकृतजनोंके लिए एक ही विषयकी भिन्न भिन्न भाषामे विभिन्न कृति रचना द्वारा उद्‌भावना की है, जबकि श्रीआत्मानदजी म ने समन्वयी दृष्टिकोणको नयनपटल पर स्थापित करते हुए सर्वके लिए एक ही कृतिमें, अनेक विषयोको अनूठे सामजस्यसे सजाया है-यथा- लूपकादि मूर्तिपूजा विरोधियोके करतूतोसे दोनोका पुण्यप्रकोप भडक उठा था, अतः श्रीयशोविजयजी म-ने 'प्रतिमा शतक' और 'प्रतिमा पूजन न्याय' जैसी अकाट्य ग्रन्थ-रत्नासे शासन रखवाली करनेकी पूर्ण कोशिश की, तथा कुमति मदन गालन रूप '१५० गाथाके श्री महावीर स्वामीके स्तवन' मे प्राकृतजनोंके लिए 'प्रतिमा पूजन' की चार निक्षेपासे सिद्धि करते हुए प्रथमढालमे ही आगमिक प्रमाण पेश किया है-

"श्री अनुयोग दुवारे भाख्या, चार निक्षेपा सार......

चार सत्य..... ठाणांगे निरधार रे जिनजी !"(२)

और श्री आवश्यक सूत्रानुसार - **"चौविसत्थयमांहि निक्षेपा, नाम-द्रव्य दोय भावुं,**

काउसग्ग आलावे ठवणा, भाव ते सघले ल्यावुं रे जिनजी....."(४)

द्वितीयढालमे भी -**"तुझ आणा मुज मन वसी, जिहां जिन प्रतिमा सुविचार लाल रे,**

रायपसेणी सूत्रमां, सूरयाभ तणो अधिकार लाल रे......" (९)

इस प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, औपपातिक सूत्र, ज्ञाता सूत्र, भगवती सूत्र, प्रथम और षष्ठम् अंगादि अनेक आंगोपांगके संदर्भ प्रस्तुत किये हैं । उसी प्रकार श्रीआत्मानदजी म सा ने 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थमे श्रीजिन-प्रतिमा पूजनकी आगमाधारित अकाट्य तर्कोसे सिद्धि करके जैन समाज पर महदुपकार किया है साथ ही साथ मूर्तिपूजा उत्थापकोकी कडी आलोचना करके उनको खामोश किया है और उनके आत्म-कल्याणका मार्ग चिह्नित किया है **-इस ग्रन्थमें भी प्रायः जिन प्रतिमा संबंधी सविस्तर विवेचन शास्त्रानुसार किया है । इसवास्ते स्थानकवासी-ढूंढक लोगोंको बहुत नम्रतासे बिनती की जाती है कि हे प्रिय मित्रो ! जैन शास्त्रोंके प्रमाणोंसे, प्राचीन लेखोंके प्रमाणोंसे, प्राचीन जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओंके प्रमाणोंसे, अन्य मतियोंके प्रमाणोंसे तथा अंग्रेज विद्वानोंके प्रमाणोंसे-इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि प्रत्येक जैनी जिन प्रतिमाको मानते और वदना नमस्कार, पूजा-सेवा-भक्ति करते थे, तो फेर तुम लोग किस वास्ते हठ पकडके जिनप्रतिमाका निषेध करते हो ? इस वास्ते हठको छोडकर श्रावकोंको श्रीजिन-प्रतिमा पूजनेका निषेध**

मत करो, जिससे तुमारा और तुमारे श्रावकोंका कल्याण होवे ।"[१९].

श्रीयशोविजयजी म.ने १२५ गाथाके नयविचार गर्भित "श्रीसिमंधर जिन स्तवन"मे शुद्ध देशना स्वरूप, आत्मतत्त्व और स्वरूप परिचय, निश्चय और व्यवहार नयकी जीव... समन्विति, द्रव्य और भावरूप प्रभु-भक्ति एव जिन-पूजा द्वारा कर्म निर्जराका स्वरूप वर्णित करते हुए ग्यारहवी ढालमे गाया है -

"कुमति इम सकल दूरे करी, धारिये धर्मनी रीत रे,

हारिये नवि प्रभु बल थकी, पामिये जगतमां जीतरे.... स्वामी सिमंधरा ! तूं जयो..."(११४)

"मुज होजो चित्त शुभभावथी, भव-भव ताहरी सेव रे,

याचिये कोडि यतने करी, एह तुज आगले देव रे. स्वामी सिमंधरा ! तू जयो..."(१२४)

उसी प्रकार श्रीआत्मानदजी म.सा.ने भी इस विषयमे अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये है

"ज्ञान वचन पूजारस छायो, नाश कष्ट भविजन मन भायो

यूं जिन मूरति रंग देख, दुरगति मेरी खुट गयी रे....

कुमति मेरी मिट गयी रे, आज श्री शंखेश्वर दरस देख...."[२०]

सिद्धान्त' विचार रहस्य गर्भित ३५० गाथाके श्रीसिमंधर स्वामीजीके स्तवनमे श्रीयशोविजयजी म.सा.ने धर्मरूप रत्नत्रयीके योग्य पात्रके लक्षणोको आलेखित करते हुए जो चित्र अकित किया है तदन्तर्गत सूत्रविरोधी तीर्थोत्थापक अथवा जैन कुलमे जन्म होनेसे ही अपना उद्धार माननेवाले. गुरुकुल त्यागकर स्वच्छद उग्रविहार या प्रखर रत्नत्रयीके आराधक अथवा वर्तमानकालमें आगमानुसार 'गीतार्थोके अभावमे निपुणमति एकल विहारी हो सकता है'—इसके आधार पर स्वच्छद एकल विहारी. अकेले ज्ञानसे ही या केवल क्रियामे डूब जानेसे ही मोक्षप्राप्तिके समर्थक, केवल सैद्धान्तिक अहिंसा पालनमे ही धर्माराधना माननेवाले अथवा केवल 'सूत्रो'को मानकर पचागी रूप 'अर्थ'के लोपक-स्थानकवासी आदि एकान्तवादियोकी प्ररूपणा करके उन्हे हितशिक्षा देते हुए भावश्रावकके लक्षण दर्शाते हैं -

"एकवीस गुण जेणे लहया, जे निज मर्यादामां रह्या

तेह भावश्रावकता लहे, तस लक्षण ए प्रभु तुं कहे ।"- ढाल-१२.१.

पश्चात् भावसाधुके सात लक्षणका विवरण ढाल-१४मे देते हुए उस पथके पथिक मुनिवरकी धन्यताकी बिरुदावली ललकारते हैं - **"भोग पंक त्यजी ऊपर बेठो; पंकज परे जे न्यारा**

सिंह परे निज विक्रम शूरा, त्रिभुवन जन आधारा....

धन ते मुनिवरा रे, जे चाले समभावे..... ढाल - १५.२

और अतमे शुद्ध निश्चयनय और शुद्धव्यवहार नय—ज्ञान और क्रियादिका स्वरूप एव तपगच्छके पूर्व परपरित 'निर्ग्रथादि' छ नामोका इतिवृत्त फरमाते हुए अतमे जिनशासनके प्रति बहुमानयुक्त समर्पण भाव प्रकट करते हुए लिखते हैं -

"आज जिनभाण तुज एक मुज शिर धरुं, अवरनी वाणी नवि काने सुणिये ।

सर्व दर्शन तणुं मूल तुज शासने, तेणे ते एक सुविवेक थुणिये ।"...

जैसे श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.ने भी फरमाया है कि - **"जैन दर्शन रूपी समुद्रमें सर्व नदियाँ (सर्व दर्शन) समा जाते हैं, लेकिन किसी एक नदीमें समुद्र दृष्टिगत नहीं हो सकता ।"** ठीक उसी प्रकार श्रीयशोविजयजी म.ने भी सर्व दर्शनोका जैन दर्शनमे होना सिद्ध किया है । परिणामत: **"तुज वचनराग सुखसागर हु गणु, सकल सुर मनुज सुख एक बिंदु"** कहकर जिनशासनके सिद्धान्तोकी सर्वोत्कृष्टता दर्शायी है । श्रीआत्मानदजीम.को भी अन्य दर्शनोसे इसलिए द्वेष नही है कि किसी भी दर्शनसे उनका पक्षपात नही है । अत: उनकी एकमात्र भावना है—

"तुझ किरपा भई नाथ एक मुझ भावना, जिन आज्ञा परमाण और नहीं गावना ।

पक्षपात नहीं लेस द्वेष किनसुं करुं, ए ही स्वभाव जिणंद सदा मनमें धरुं ।।"[२१]

भक्त जब भगवतकी भक्तिमे तदाकर हो जाता है तो उस श्री जिनेश्वर देवकी कृपावर्षासे सर्व विटंबनाये और आपदाये दूर हो जाती है एवं सपदाये अपने आप आन मिलती हैं । दोनो विनित भक्त उस कृपासिंधुके दो बिंदुके लिए विनती करते है - श्री ...विजयजी म पाप प्रनाशकको कहते हैं -

"तुं वसे जो प्रभु हर्षभर हियडले, तो सकल पापना बंध तूटे

उगते गगन सूरयतणे मंडले, दह दिशि जिम तिमिर पडल फूटे"-(ढाल१७-३)

श्रीआत्मानदजी म जीको सावले सलुणे शखेश्वरकी शरण ग्रहण करके अपेक्षित है–

"हम तो **काल पंचम वस आये**, तुमारो शरण जिनेश नाम...

मोरी बैयां तो पकर शंखेश शाम... "

दोनोकी समर्पित भक्तिमे विनती करते समयकी दृढ श्रद्धा भी दर्शनीय है जिससे भगवत मानो उन भक्तोकी मुट्ठीमे बद है । पू श्रीयशोविजयजी म का विश्वास–

"आज जिनराज मुझ कार्य सिद्धां सवे, विनती माहरी चित्त धारी

मार्ग जो में लह्यो तुज कृपा रस थकी, तो हुई संपदा प्रकट सारी ।"(ढाल१७-१)

श्रीआत्मारामजी म भी अखूट आस्थाके साथ अपने भवभजन भगवत श्रीमहावीर स्वामीकी चरणरेणुमे लोटते हुए अपना दृढ निश्चय प्रकट करते हुए गुनगुनाते हैं–

"चरणकमलकी रेणुमें रे, हुं लोटूं जगदीश; अंह्रि न छोडुं तब लगे रे, न करे निज सम ईश।

आतमराम तूं माहरो रे,त्रिशलानंदन वीर,ज्ञान दिवाकर जग जयोरे,भंजन भवदुःख भीर जिणद शुं प्रीत लागी रे।"

सर्व आस्तिक दर्शनोमे भगवद् भक्तिके विशिष्ट निरूपण हुए हैं, जिसके दो प्रकार है–एक सकाम और दूसरी निष्काम । प्रथममे भक्तिके बदलेमे भक्तके दिलमे कुछ न कुछ प्राप्त करनेकी अभिलाषा होती है जबकि द्वितीय भगवद्गीतानुसार निष्काम भक्ति, बिना फलकी अपेक्षा केवल कर्म करना है । लेकिन धैर्यसे परिक्षण करे तब यह स्पष्ट होता है कि बिना उद्देश्यके कार्य हो ही नही सकता अत जैन दर्शनानुसार भगवद्-भक्तिके फल स्वरूप 'कुछ' तो प्राप्त करना ही है, जिससे अनन्त दुःखमय भवभ्रमण नष्ट हो जाय और शाश्वत सुख प्राप्त हो जाय और जिसकी प्राप्त्यानन्तर आत्मा आप ही निष्काम बन जाये । अत श्रीयशोविजयजी म सा अपने चतुर सुजाण साहिब चद्रप्रभ स्वामीको कहते हैं

"सेवा जाणो दासनीं रे, देश्यो फल निर्वाण..."

इसी भावको श्रीआत्मानद म आनददायक श्रीमहावीर स्वामी समक्ष प्रकट करते हुए गाते है -

"रंभा-रमण, सुरिंद, पदचक्री, वांछुं हुं नहीं निःकामी ।

आतमराम आनंदरस पूरण, दो मुक्ति सुखधामी....."

दोनोंके समग्र साहित्यकी साम्यता और वैषम्यताके अनुशीलनमे अग्रगामी होते हुए हमे यह अनुभव होता है कि श्रीयशोविजयजी म सा ने अनेक ढालो युक्त वृहत् स्तवन रचनाओमे शासनके मूल्यवान-उच्च और गुढ सिद्धान्तोको कैद किया है, तो श्रीआत्मानदजी म सा ने उन्हीको फूटकल–छोटे छोटे स्तवनोमे और विशेषतया गद्य साहित्य द्वारा अपनी अछूती विशिष्ट शैलीसे प्रकट किया है । श्री आत्मानदजी म ने पूजाके विविध प्रकारो और अन्य आराधनामय विषयो पर आधारित पूजा साहित्य एव पदादिकी रचना करके महत लोकोपकार किया है । दोनोने अपनी पद्यकृतियोको विशिष्ट राग-रागिणीसे सजाकर सूर मदिरके साजोमे सगीतकी फूक भरी है जिन्हे गाते या सुनते हुए हृदय वीणाके तार झकृत हो उठते हैं, भावुक हृदय उस बहते हुए भाव प्रवाहो पर डोलने लगता है–उसमे डूबने लगता है ।

उनके पद्यकी एक और विशिष्टता यह है कि काव्यके अगरूप अलकार आयोजना और प्रतीक नियोजनाका निर्वाह स्वस्थतापूर्वक करके उसमे एक अनूठी थिरकन-चैतन्य प्रकट किया है । श्रीयशोविजयजी म सा के पद्य कही कही पर कथनात्मक प्रस्तार और पदार्थ-विशेषणादिकी सूचिमात्र रूपमे या कभी उपमा दृष्टान्तकी पुनरुक्तियोके कारण बोझिल या नीरस बने हैं लेकिन उनमे निहित वैविध्यपूर्ण विशालता, भावार्द

और मार्मिक पक्तियाँ, वाणी वैचित्र्य और स्वरूप वैविध्य, कही परभाव-हिंडोले पर खेलती हृदयोर्मियाँ तो कही गहन -रहस्यमय-तात्त्विक और आत्मिक अनुभूतियोंकी धारासे शोभित समतोल-सात्त्विक दृष्टिसे अत्यन्त प्रशसनीय बन गये हैं । श्रीआत्मानदजीम.की पद्य रचनाओं उन्ही काव्यागोके ताने-बानेकी नक्काशी सौंदर्यता बक्षती है, और सहसा फूटकर सहज रूपमे प्रवाहित अतरकी अप्रतीम अनुभूतियाँ आह्लादित करती रहती है । उनकी विषय वैविध्यता सिमित होने परभी प्रयुक्त विषय या भावोका पिष्टपेषण प्राय नही हुआ । पूजाकाव्योमे तो उनकी न्यौच्छावरी भावोदधिमे हिलोरे उत्पन्न करती है ।

इसके अतिरिक्त गद्य साहित्य विषयक तुल्यता अवगाहन पर निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि श्रीयशोविजयजी म सा की भाषा पाडित्यपूर्ण-विद्वज्जनोके मनमयूरको नर्तन करवानेके काविल है जिनमे विशेष रूपसे पूर्वाचार्य रचित उत्तम सूत्र ग्रन्थोकी टीका या वृत्तियोका निर्माण हुआ है, जबकि श्रीआत्मानदजी म सा की भाषा सरल-सहज-लोकभोग्य फिर भी सस्कृत तत्सम शब्दोकी बहुलताके कारण सुधी शास्त्रज्ञोके मनको भी रजन करवानेमे सक्षम है । कभी विषयानुकूल गहन गभीर बननेवाली गिरा सामान्यत सुगम सुबोधदायी प्रवहमान स्वरूप धारण किये हुए जन-मनको प्रसन्न करती है । श्रीयशोविजयजी म सा ने अपने ग्रन्थोमे स्वतत्र रूपसे न्याय विषयक सैद्धान्तिक साहित्य–जिनमे नव्य न्याय प्रमुख है–की प्ररूपणा की है, जबकि श्री आत्मानदजी म सा ने उन प्ररूपणाओको व्यवहारमे इतर दर्शनके साथ कैसे घटित करवायी जा सकती है उनके प्रायोगिक प्रसगोका विवरण दिया है । दोनोके आत्मविचार और आगम रहस्य–अध्यात्म-योग और ध्यान, साधु-श्रावक योग्य गुण चर्याये-और-भावनाये, कर्म और आत्मिक प्रगति प्रदर्शक गुणस्थानक स्वरूप, तत्त्वत्रयी और रत्नत्रयीकी प्ररूपणा–आदिमे उनकी उत्तम श्रुतोपासना और अध्यात्म योग साधना छलकती है। ऐसी स्वतत्र रचनाओके अतिरिक्त दोनोने अमूल्य और अलभ्य प्राचीन ग्रन्थोकी प्रतिलिपियाँ की है और पूर्वाचार्य कृत ग्रन्थोमे सशोधन भी किये है ।

कहॉ कहॉ तक गिनाये ! इन दोनो महामनीषियोकी प्राज्ञताको शब्दोके घेरेमे बाधनेका यह तो एक क्षुल्लक प्रयत्न किया गया है । उनका जितना विशद उतना ही गहन, हिंमगिरिशृगोसे भी उन्नत, प्राजल एव प्रातीभ पाडित्यको इस विहगावलोकनमे परिपूर्ण न्याय न मिलना ही स्वाभाविक है । यह तो उन मेधावी और प्रतापी सरस्वती सुपुत्रोको पुष्पाजलिके पुष्पकी पखुडी सदृश भावार्पण है । उनके अमर साहित्यकी गिर्वाण गाथायें ही स्वय उस यशोगानका आत्मानद प्रदान करनेमे सामर्थ्य रख सकती है । यहॉ तो केवल गिने-चूने रसके छिंटे ही प्रस्तुति पा सके है जिससे रसधाराके तीव्र वेगवान निर्झरकी कल्पना प्राप्त हो और उसके परिशीलनमे प्रवृत्ति हो यही स्तुत्य कर्तव्यकी यादको सतेज करनेका उद्योग किया गया है ।

अध्यात्मयोगी श्रीआनंदघनजी म.सा. तथा युगवीर आचार्य श्रीआत्मानंदजी म.सा.—

"अब हम अमर भये न मरेंगे" के गायक श्रीआनदघनजी म सा अर्थात् अतरतम आत्माके अणु-परमाणुमे व्याप्त अतर्यामीका तेजपूज स्वरूप । आत्मवाणी-आत्मोद्योत-आत्म-प्रतिष्ठा रूप आध्यात्मिक आनद या मस्तीमे मस्त श्रीलाभानदजीसे उत्तरोत्तर अध्यात्मके चरमोत्कर्षके बोध प्रापक बननेवाले योगीराज श्रीआनदघनजी म नाम और उपनाम–दोनोको सार्थकता प्रदान करनेवाले अथवा यथा नाम तथा गुण उक्तिको चरितार्थ करनेवाले आध्यात्मिक जीवनके जाज्वल्मान ज्योतिपूज थे । इनकी सातोधातु–दशो प्राण–पाच इन्द्रिय और मन–प्रत्येक रोम-रोममे, खूनकी बूदबूदमे अर्थात तन-मन-आत्मा सर्वस्वमे अस्थिमज्जावत् अहर्निश बहती थी परमात्म भक्तिकी पावनी गगोत्री ।

जीवनतथ्य–"सत आनंदघनका जन्म स्थान-समय-नाम, माता-पिता-परिवार, दीक्षा स्थान-समय-गुरु परपरा-संप्रदाय, देहविलय-स्थान, समय आदिके बारेमें अंतिम निर्णायक ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं होते है । विद्वानोंमें इस सम्बन्धमें मत वैभिन्न एवं विवाद है ।[१] जैन साधु प्राय अपनी पूर्वावस्था (गृहस्थावस्था)का नाम-गोत्र स्थान-समयादिकी उपेक्षा करते हैं । अपनी कृतियोमे प्राय गुरु परपराको उल्लिखित करते हैं । श्रीआनदघनजी

म.की पूर्वावस्थाका-जन्म-स्थान, माता-पितादिका निदेश न उन्होने स्वय किया है और न उनके समकालीन किसी अन्य साहित्कारने ही तत्सबंधी जिक्र किया है । अत उनके सबधमे अत साक्ष्य और बहिःसाक्ष्य-दोनोका अभाव है । हमारे सामने उनका साहित्य रूपी यशोदेह जो विद्यमान है वही उनकी केवल गुणगाथाको प्रकाशमान कर सकता है । इनकी कृतियोके आधार पर आ.श्रीबुद्धिसागर सुरीश्वरजी म.सा., नटवरलाल व्यास, मोहनलाल दलीचद देसाई, मनसुखलाल रवजीभाई, अगरचदजी नाहटा, अबाशकर नागर, मोतीचदजी कापडिया, डॉ. वासुदेवसिंह, क्षितिमोहनसेनादि अनेक विद्वानोने अपने अपने अभिप्राय प्रस्तुत किये है लेकिन इन सभीमे विशिष्ट स्थान रखनेवाला निश्चित ऐतिहासिक तथ्योको स्पष्ट उल्लिखित कर्ता "श्री सम्मेत शिखरजी तीर्थनां ढालियाँ"-संपादक आ.श्रीमद् पद्मसूरिजी म.-का सदर्भ अधिक उपयुक्त और सत्यसे अधिक निकट लगता है कि "श्री आनंदघनजी म., प. श्री सत्यविजयजी गणिके लघुभ्राता थे और बडे भाईके साथ उन्होंने भी तपागच्छके क्रियोद्धारमें योगदान दिया था ।"[?] आचार्य प्रवरश्री आत्मानदजी म.सा.ने भी अपने "जैन तत्त्वादर्श" के उत्तरार्धमे पृ. ५८१ मे लिखा है –"श्री सत्यविजयजी गणिजी क्रियोद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ बहुत वर्ष लग वनवासमें रहें और बड़ी तपस्या-योगाभ्यासादि करा" ।

अत इन पूर्वोल्लिखित तथ्योको ध्यानमे रखते हुए निष्कर्ष रूपमें यह कहा जा सकता है कि पं.श्री सत्यविजयजीका जन्म वि.सं. १६५६ में लाडलूंके दुग्गड गोत्रीय शा.वीरचंद ओसवालकी पत्नी वीरमदेवीकी रत्नकुक्षिसे हुआ था ।[?] इस आधार पर हम श्रीआनदघनजी म.की जीवनीके स्थूल तथ्योको प्राय इस रूपमे निर्णित कर सकते है–श्रीआनदघनजी म.का जन्म प्राय वि.स.१६६०के आसपास लाडलूमे दुग्गड गोत्रीय वीरचदजीके घर माता वीरमदेवीके लघुपुत्रके रूपमे हुआ होगा । प्राय: बडे भ्राता श्रीसत्यविजयजी गणिजीके साथ वे भी तपगच्छमे शायद श्रीविजयदेवसूरिजीकी परपरामे दीक्षित हुए होगे । उनकी रचनाये-विशेषत श्रीसुविधिनाथ जिन स्तवन और श्री नमिनाथ जिन स्तवनके अध्ययनोपरान्त हम निर्विवाद रूपसे उनको श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परपराके श्रेष्ठ साधु मान सकते है । उनका देहोत्सर्ग प्राय मेडता शहरमे वि.स.१९३१के आसपासके समयमे हुआ होगा, जहाँ उनका समाधि स्थल बना हुआ है ।

अध्यात्मरसके महानदको प्रवाहित करनेमे सामर्थ्यवान्, अद्भूत अध्यात्म मूर्ति, स्वभाव रमणताके लक्ष्यसे अत्यन्त जागृतावस्थाके लिए आत्मिक शक्तियोको उजागर करनेवाले-त्यागी-वैरागी-स्वदेह ममत्वके त्यागी-वनविहारी उत्तम कोटिके सत-बिना गच्छकी निश्रा, निवृत्तिमार्ग परायण श्रीमद् आनदघनजी म.के अतरमे एक ही रटप या एक ही तलप अथवा एक ही ललक थी–'आत्माके साथ लगे हुए इस अनादिकालीन कर्म सयोगसे किसविध मुक्त हुआ जा सके ?'

अनेक आक्षेपकर्ताओको उदार दिलसे क्षमा प्रदाता सच्चे क्षमाश्रमणकी आतरिक वैराग्य भावना और करुणा भावनामे, अन्य साधुओके शिथिलाचारादि सयोगोने आगमे घीका कार्य किया । वे परिस्थितियाँ उन भावोकी वृद्धिके निमित्त बनी उनकी निःसगताके परिणाम अधिक वेगवान बने, परिणामत वे वितडावाद-फिजूल चर्चाये, विकथाये और गृहस्थके निरर्थक अधिक परिचयसे-स्पृहासे विमुख होने लगे । केवल क्षुधादि शमन या अत्यल्प अन्य जीवनावश्कताओकी पूर्ति हेतु ही गृहस्थके सपर्कमे आते थे अन्यथा आत्माको वैराग्यभावसे भावित करते हुए, मदकषायी बनकर मोहमल्लोको हरानेमे आत्म सामर्थ्यको स्फूरायमान करनेसे अप्रमत्त चारित्र भाव द्वारा अतर्मुख बनकर आत्मगुण विचारणासे अध्यात्मके अभिनव आत्मानुभूतियोका अनुभव करते रहते थे । ये अनुभवज्ञाता अवधू महात्मा मानो शनै शनै उन अनुभूतियोके अक्षयनिधि बनते गये। अखडानदकी मस्तीमे मस्त उस योगीश्वरकी बस एक ही लगन थी- एक ही रटण था "निरजन यार, मोहे कैसे मिलेंगें ?" उस अकल-यार की तलाशमे जन्म-जरा-देह-मृत्यु आदिसे अहत्व ममत्व-भयत्वकी वृत्तिको हटाकर, बाह्य जगतका ध्यान व भान भूलकर आतर्ध्यान दशामे-शरीरधारी होने पर भी अशरीरी तुल्य भावमे निःसग दशामे निमज्जन करनेवाले स्वात्माके सच्चे आशिक थे । अत आत्म दर्शनमे सहायकके अतिरिक्त अन्य सब कुछ, उनकी आत्मोपासना और परमात्म प्राकट्यकी अनूठी और

अदम्य उद्यतताके नीचे दब जाता था । उनकी रुचि तो केवल सूक्ष्मतम आत्म स्वरूपके दर्शन और **समग्र जीवसृष्टिके साथ एकरूपता - "अप्पा सो परमप्पा"** अथवा **"मित्तिमे सव्व भूएसु"** की उदात्त भावनाको **जीवनमे साकार बनानेके पुरुषार्थमे ही** ः ।

अनूठी अध्यात्म शक्ति और निर्मल चरित्रके प्रभावसे निष्पन्न गुप्त लब्धि-शक्तियाँ प्राप्त होने पर **भी उनका उपयोग केवल निरहंकार और लोकेषणा-मानप्रतिष्ठादिसे दूर निर्लिप्तभावसे एक मात्र शासनसेवा-प्रभावनाके लिए ही करनेवाले अनुभव ज्ञानीका जिनशासनके प्रति अविहड़ राग अनुमोदनीय था** । वे अपने समकालीन मुनिवृंदको अमूल्य परामर्श देते रहते थे । उस प्रशम निर्झरकी बूंदे प्राप्त करनेवाले भाग्यवानोमे प्रमुख रूपसे श्रीज्ञानविमल जी म श्रीसत्यविजयजी गणि, महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म आदि थे । उनकी अद्भूत व्याख्यान कलाका जिक्र होते ही कर्णपटल पर उठते है वे स्वर जो श्रीदसवैकालिक सूत्रके प्रथम श्लोक (मंगलाचरण) पर छमास पर्यंत विवेचन स्वरूप तरंगित हुए थे । उनके सरल-मिलनसार-करुणार्द्र हृदयसे विरागकी वाणी बजती थी जिनमे सदेशके स्वर थे *"मोहसुभटको जितनेके लिए यह साधु वेश–धर्मवीरका बाना–धारण किया है अत उस मोह सुभटके अधीन बनानेवाले भौतिक देहके एक भी अणु-परमाणु मात्र पर भी ममत्वभाव लक्ष्य प्राप्तिमे विघ्नरूप बन सकता है ।"*

उनके पुण्य प्रकर्षसे प्राप्त लब्धियोसे निष्पन्न अनेक चमत्कारोका प्रतिफलन उनके जीवन परिवेशमे व्याप्त विभिन्न अनुश्रुतियोसे होता है-यथा-(१) साधुजनोको परेशानकर्ता बादशाहके बेटेको अपनी वचनसिद्धिसे केवल 'खडा रह' कहकर स्तंभित कर दिया था, पुन बादशाहकी प्रार्थनासे व्युत्पन्न करुणाभावसे उसे 'चलेगा' बोलकर पुन गतिमान भी कर दिया था । (२) मित्रकी स्वर्णरससिद्ध कूपिकाको पटककर तोड देने पर उनके शिष्यकी नाराजगीको दूर करनेके लिए सकल्प मात्रसे पेशाब भी सुवर्णरस-सिद्धरसायन-बन सकता है, वह प्रयोग दर्शाकर चमत्कृत कर दिया था । वैसे ही श्री आत्मानदजी म सा ने बिकानेरमे एक लडकेको, जिसके परिवारवाले दीक्षाग्रहणके लिए इन्कार कर रहे थे, सकल्प बल पर उनकी मनोगत भावनाये पलटकर सर्व सम्मतिसे ठाठबाठसे दीक्षा करवायी थी ।[९] (३) एक बार ज्वरके पुद्गलोको अपने कपडेमे उतारकर आगतुकोको धर्मदेशना श्रवण करवायी, पश्चात् पुन वह कपडा पहनकर ज्वरके परमाणु शरीरमे स्थापन कर दिये । (४) अक्षीण लब्धिके बलपर श्राविका धनवती द्वारा प्रत्येक घडोमे एक एक सिक्का डालकर उपर कपडा लपेटकर मनचाहे (लखलूट) सिक्के निकलवा कर राजाको दान दिलवाया था। (५) जोधपूरके महाराजा-महारानीके मध्य मनमेल करवानेमें निःस्पृहतासे मुहसे निकला ...न सिद्ध हो गया था (६) सती होनेके लिए जा रही शेठकी बेटीको प्रतिबोध करके आत्म स्वभावमे स्थिर किया । (७) राजाकी दो विधवा बेटियोका शोक सान्त्वना देकर दूर करवाके धर्ममे स्थिर किया । (८) मारवाडके गरीब वणिकके लोहेके बाटको स्वर्णमय बनाकर उसकी निर्धनता दूर करके उपकार किया था । श्री आत्मानदजी म के जीवनमे भी ऐसी घटनाये घटित हुई थी जिनका जिक्र इस शोधप्रबन्धमे अन्यत्र किया ही है ।

श्रीआनदघनजी म और श्रीआत्मानदजी म मध्य-<u>तुल्यातुल्यता</u>–(१) प्रथम दृष्टिमे ही उन दोनो महानुभावोमे नामसे ही तुल्यता हमे प्रसन्नता प्रदान करती है । दोनोके नाम आनद, काम आनद, दोनो है धाम आनद-यथा-आनघनजी म के राग जयजयवतीमे रचे गये अपने पदमे आनदघनका जो गुजन सुनायी देता है वाकइ आह्लादकारी है

"मेरे प्राण आनंदघन, तान आनंदघन
मात आनदघन, तात आनदघन, गात आनदघन, जात आनदघन;
राज आनदघन, काज आनदघन, साज आनंदघन, लाज आनंदघन,
आभ आनदघन, गाभ आनदघन, नाभ आनंदघन, लाभ आनंदघन" .....[१०]

श्रीआत्मानदजी म श्रीशखेश्वर पार्श्वनाथ जिन सतवनमे गाते है

"श्याम मघ सम पासजी निरखी, आतम आनंद शिखी जिम हरखी
आनंद रस पूरण सुख देखी आनंद पूरण आतमराम.....
अनघ अमल अज चिद्‌घनराशि, आनंदघन प्रभु आतमराम
तोरी छबि मनोहारी संखेश शाम .....

(२) दोनो ही **विश्वशाति-विश्व मैत्री और विश्व बधुत्वकी भावनाको प्रवाहित करनेवाले समन्वयकारी सत थे । (३) आत्माराधनालीन, अद्‌भूत आराधक, समदर्शी, समताके साधक–आगमोके अभिज्ञाता–श्रेष्ठ दार्शनिक-**षडदर्शनवेत्ता-सम्यक्त्वयुक्त रत्नत्रयीके प्रखर प्रतिपादक–उन दोनोकी रचनाओमे भी भक्तियोग-ज्ञानयोग-समर्पणयोगकी त्रिवेणीका प्रवाह विशेषत स्तवनोमे सम्यक रूपसे प्रवाहित हुआ है । (४) दोनोने अपने समकालीन साथियोको योग्य मार्गदर्शन दिया था । हॉलाकि श्रीआनदघनजीने विशेषत: बनमे निवासित होकर उच्च अध्यात्म योगकी साधना की थी, जबकि श्रीआत्मानदजी म ने गुरु और गच्छकी निश्रामे श्रीचतुर्विध सघके मध्य निवास करके श्री सघको सत्यपथका पथिक ाया था । (५) श्री आनदघनजीम ने अपनी उत्तरावस्थामे गच्छकी निश्राको त्यागकर आत्मानुभूति प्राप्त करके जीवन धन्य बनाया था और उन्ही अनुभूतियोको जिन काव्यकलापोसे सजाया था, वे जन समाजके शृगार बनकर अमरता प्राप्त कर गये, जबकि श्रीआत्मानदजी म ने सत्यके साक्षात्कार पश्चात् उत्सूत्राचारी ढूढक पथका त्याग करके सविज्ञ समाचारीको गले लगानेमे अपना गौरव समझा था । उन्होने जिस सत्यका साक्षात्कार किया था, उसे अपने प्रवचनो और लेखिनीके माध्यमसे प्रतिमा-पूजन विरोधियोको बखूबी समझाया था और जैन समाज-विशेष रूपसे पजाब, राजस्थानका उद्धार किया, जो इतिहासकी अमरगाथा बन गया । (६) दोनोकी सामर्थ्यवान आत्मासे मानव जन्मके साफल्य सूचित हेतुओके अजस्र प्रेरणा स्रोत प्रवाहित होते रहे थे, जिनमे उन्होने अपने कर्ममलको प्रक्षालित करके स्वयकी आत्माको भी पावन बनाया था । (७) श्रीआनदघनजी म की वाणी वाड्मय रूपमे सिमित है, लेकिन अगाध और अथाह-अत्यन्त गभीर और विशद अर्थसभर है जैसे पाताल कूपका पानी । कही कही तो एक एक पद्य इतना अवबोध समेटे हुए है कि उससे एक एक ग्रन्थकी रचना हो सकती है। अद्यावधि प्राप्त साहित्यमे केवल दो कृतियॉ -**'श्री आनंदघन जिन चोवीसी'** और **'श्री आनंदघन पद बहोत्तरी'** प्राप्य है, जो अनेक रागरागिणियोमे बद्ध विविध भावापन्न पद्य रूप ही है । जबकि श्रीआत्मानदजी म का वाड्मय विहार विभिन्न विषयोकी अनेक कुजगलियोसे गुजरता हुआ आत्म शीतलता प्राप्त करवाता है । उनके बीसियो ग्रथ-प्रमाण विशद साहित्यने गद्य और पद्यके विविध प्रकारो द्वारा अध्यात्म-भक्ति, आगमिक-दार्शनिक-ऐतिहासिक-वैज्ञानिक–आचरणा विषयक आदि विभिन्न विषयोको अपनेमे समेट लिया है । (८) दोनोने व्यक्तिकी सुषुप्त चेतनाको झकझोरनेमे सामर्थ्यवान् फिरभी सरल एव भाववाही-तत्त्वबोधदायी अ मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी होनेसे लोकप्रिय अमर रचनाओके अमूल्य-वैभविक विरासतकी समाजको भेट की है। (९) दोनोकी कृतियोसे झकृत होता है जिनेश्वरके अचिन्त्य सामर्थ्यके विराट स्वरूपका निरूपण और उत्कृष्ट जिनभक्तिके अतरोद्‌गारके साथ साथ महा महिमावान-प्रतिभावान-उदात्त आत्मभावोका चित्रण-जिसके लिए श्रीआनदघनजी म के श्री विमलनाथजी जिन स्तवनके भाव विशेष रूपसे दृष्टव्य है

"विमल जिन दीठां लोयण आज ! मारां सिद्धयाँ वांछित काज
समरथ साहिब तूं धणी रे, पाम्यो परम उदार
धिंगधणी माथे कियो, कुण गजे नर खेट
मन विसरामी वालहोरे, आतमचो आधार. विमल जिन
अमिय भरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोय
शात सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय विमलजिन..."[११]

इस प्रकार सपूर्ण स्तवन रचनामे, भक्ति रस लबालब भरा हुआ है । ऐसे ही अन्य-ऋषभजिनादि स्तवनो और पदोसे भी ऐसे भावोके अनुभव होते हैं । उसी तरह श्रीआत्मानदजी म सा की रचनाओमे उन

भावोको कही ढूढनेके लिए जाना नही पडता-अनेक रचनाओमे हम उसका आस्वाद कर सकते हैं-यथा-

"तेरो दरस मन भायो चरम जिन तेरो दरस मन भायो ।

वरसीदान दे रोरतावारी, संयम राज्य उपायो.....

दीन-हीनता कबुयन तेरे, सत् चित् आनंद रायो..... चरम...

हुं बालक शरणागत तेरो, मुझको क्युं विसरायो ?

तेरे विरहसे हुं दुःख पामुं, कर मुझ आतमरायो... चरम". [१२]

"करुणा रस भर नयन कचोरे, अमृत रस बरसावे

वदनचंद चकोर ज्यू, निरखी, तनमन अति उलसावेजी".. [१३]

"अर जिनेश्वर चंद सखी मोने देखण दे. गत कलिमल दुःख धंद...

त्रिभुवन नयनानंद.... मोह तिमिर भयो अमंद.... सखी मोने.."[१४]

दोनो कविराजोने अमूर्त भावोका नाटकीय ढगसे मानवीयकरण किया है, जो उनके पद्योकी अछूती आभा है-यथा-श्रीआनदघनजीकी रचनाओमे देह नगरके राजवी चेतनजीकी, 'रतनागरकी जाई'-समुद्रकी बेटी समता प्रमुख रानी और ममता, माया, मोहनी, तृष्णा, कुबुद्धि आदि उसकी अन्य रानियोकी कहानी उनके विभिन्न पदोसे झलकती है । समता या ममता-कुमता-तृष्णा-कुबुद्धि-सुबुद्धि-चेतन-(समताके भाई और चेतनके मित्र रूप) अनुभव और विवेक-राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, कपट (आदि कुमतिका परिवार), सरलता-मृदुता-सतोष-श्रद्धा-इन्द्रिय-जयादि (सुमतिके स्वजन) आदि अमूर्त भावोका मानवाकार रूपमे जीवन-व्यवहारके प्रत्यक्ष सघर्ष—सवाद-युद्ध-डराना-समझाना आदिका—जीवत चित्र प्रस्तुत किया है · समताके विरहको प्रकट करते है - **"निसि अँधियारी मोहि हसे रे, तारे दांत दिखाई**

भादो कादो मैं कियो प्यारे, आंसूअन धार बहायी....."[१५]

अत विरहिणी समतारानी तृष्णा और कुबुद्धिको कोसती हुई चेतनजीको निजघर आनेके लिए मनुहार करती है -

"तृष्णा रांड भांडकी जाई, कहा घर करे सवारो.....

कुलटा कुटिल कुबुद्धि संग खेलके, अपनी पत क्यूं हारो...

'आनंदघन' समता घर आवे, वाजे जित नगारो...."[१६]

फिर भी जब चेतनजी मानते नही है और घर आते नहीं है, तब अपनी सखी श्रद्धासे उनके हाल पूछती है। उस पर श्रद्धा उसे धीर बधाते हुए चेतनजीके हाल कहती है -

"चउगति महल न छारि ही हो, कैसे आत भरतार !

खानो न पीनो न इन बातो में हो, हसत भान न कहा हाड;

ममता खाट परे रमे हो, और निदे दिनरात; लैनो न देनो इन कथा हो, भा रही आवत जात ।

कहे सरधा सुन सामिनि हो, एतो न कीजे खेदा; हेरे हेरे प्रभु आवही हो, वदे आनंदघन भेद "[१७]

अब समता रानी अपने भाई 'विवेक'को, मोहनीके परिवारमे फसे चेतनजीके हाल सुनाकर अपना दुःख जताती है और अपने मित्रको उस राहसे वर्जकर वापस लानेकी विनती करती है -

"विवेकी वीरा सह्यो न परे, वरजो क्यूं न आपके मित्त

कहाँ निगोड़ी मोहीनी हो, मोहत लाल गमार; वाके पर 'मिथ्या'सुता हो, रीज पडे कहा यार।

क्रोध-मान बेटा भये दो, देत चपेटालोक, लोभ जमाई माया सुता हो, एक चढ़यो पर मोक" [१८]

आखिर सभीके समझाये चेतनजी अवसर प्राप्त करके अध्यात्म योग धरके समताके घर आकर उसे वादा करते है **"मेरी तू मेरी तू काहे डरे री, कहे चेतन समता सुनि आखर"** इस प्रकार श्रीआनदघनजीके चेतनजी आत्म कल्याणके सही राह पर आते है । वैसे ही श्री आत्मानदजी म ने भी समता-कुमता (सुमति-कुमति) के साथ प्रीतका जोड़-तोड़—आध्यात्मिक योगको—व्यवहार प्रतीकोसे आलेखित किया है ।

श्रीआत्मानदजीके चेतनजीको (जो **"जार मार ममता वृंगन राग-स्निग्ध अभ्यंग" करनेवाले, "राग-द्वेषकी रखवाली" से रक्षित "सघन भववनकी जंजीरोंमें" जकडे हुए "वामारस (स्त्री)के पास (बंधन)" में फंसे, "मोहकर्मकी जडो"से जकडे हुए,** "**क्रोध-मान-ममता"की चहुंकन (चौटे) पर चलनेवाले हैं-उनको)** सचेत कर दिया है और "जिनेश्वरजीके चेरा" बनाकर सावधान कर दिया **है**-यथा-

"पूरण ब्रह्म जिनेन्द्रकी वाणी, करणरंध्रमें शब्द पर्यो रे....

अनुभवरस भरी छिनकमें उमयो, आतमराम आनंद भर्यो रे...

अब क्यूं पास परो मन हंसा .... तुम चेरे जिननाथ खरे रे ."[3]

यही कारण है कि श्रीआत्मानदजीके चेतनजीकी यह दृढ आस्था हो गई है कि -"**जब कुमति टरे अरु सुमति वरे. तुं और नहीं मे और नही...**" अत कुमतिके कारण स्वयके जो हाल हवाल हुए है इससे वे "**प्रीति शुं भांगी रे कुमति** " कुमतिका त्याग करते है, और आत्म हितकार्य सुमतिसे प्रीत जोडते है- **"प्रीति लागी रे सुमति शुं प्रीति लागी.....**

सोऽहं सोऽहं रटि रटना रे, छांडयो परगुन रूप,

नट ज्यूं सांग उतारीने रे, प्रगट्यो आतम भूप.... "[4]

जैन दर्शनमे अगम-निगमके-दार्शनिक या कर्मविज्ञानादिके रहस्योको सख्यावाचक प्रतीको द्वारा वर्णित करनेकी परम्परा दृष्टिगोचर होती है । इस परपराका इन दोनो कवीश्वरोने अनेक स्थानो पर उपयोग किया है-यथा-सुबुद्धि और कुबुद्धि द्वारा खेली जानेवाली चतुर्गति चौपटका सख्यावाचक प्रतीको द्वारा श्री आनदघनजीने जो चित्रण किया है वह अद्‌भूत है ।

"पाँच तले है दुआ भाई, छक्का तले है एका

सब मिल होत बराबर लेखा, यह विवेक गिनवेका"[5]

अर्थात् कुबुद्धि द्वारा-हिसा, मृषा, स्तेय, मैथुन, परिग्रह रूप-पाच आश्रवके नीचे करण-करावण रूप दो दाने अर्थात सात मिलकर और छजीव निकायके मर्दनरूप एक असयमसे (दोनो ओरसे समानरूप से) सात गतिमे--एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यच पचेन्द्रि, गर्भज तिर्यच पचेन्द्रिय, नरक, मनुष्य और देव-परिभ्रमण करना पडता है, जो चेतनकी हार रूप है । जबकि पाच इन्द्रिय और राग-द्वेष-दोके विजयसे एव काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर रूप षड्‌रिपु पर विजय प्राप्त करके एक मनोनिग्रह द्वारा आत्म सयम रूप परम साध्य प्राप्त करके उन सात गतियोका नाश कर सकते है अथवा प्रथम पॉच गुण स्थानक और अप्रमत्त सर्वविरति गुणस्थानक छ दाने प्राप्त करके शेष ६ और ८ से १३-सात गुणस्थानक (सातदाना) प्राप्त कर्ता साधक तेरहवे गुण स्थानक पर स्थिर होकर एक ना रूप अघाती कर्मोको जीत (क्षय) करके चतुर्दश गुणस्थानक-अयोगी दशा प्राप्त करके चेतन साध्य दशाको प्राप्त कर लेता है। इसीतरह श्रीआत्मानदजी म के भी सख्यावाचक प्रतीक उल्लेखनीय हैं उन्होने श्री नवपदजीकी पूजामे चतुर्थ श्रीउपाध्यायजी-गुरु भगवतके लक्षण लक्षित किये है -"**पच वर्ग वर्गित गुण चग . दसविध यतिधर्म धरी अंग... धार ब्रह्म नवगुप्ति संग.** "[6] उसी प्रकार बीस स्थानक पूजामे श्री आचार्यपदधारीके वर्णनमे भी "**पंच प्रस्थान, आठ प्रमाद, चार अनुयोग, मात विकथा**" आदिका सख्यात्मक प्रतीको द्वारा विवरण दिया गया है । तो दसवी पूजामे विनय-गुणोके विविध प्रतीकोको दर्शाया गया है यथा

"**पाच भेद दस तेरसा, बावन, छासठ मान** ."[7]

सामान्यत मनको मर्कटका रूप दिया गया है तो कहीकही उसे पवन झकोरे या वृक्षपत्र जैसा चचल वर्णित किया है । मनके भेदको समझानेके लिए कठोर तपस्वी महाज्ञानी और **धुरधर** प्रतिभावान भी अपनी असामर्थ्यता प्रकट करते है । आत्मलीन अध्यात्म योगीराज श्रीआनदघनजीम और श्रीआत्मानदजी म भी उसके प्रति अपने अनुभूत सत्योको प्रकट करते हुए उसे वश करनेवाले प्रभुसे आह्वान करते है उस मनको वशमे लानेके लिए-सहायकके रूपमे,

"मनडुं किम ही न बाजे, हो कुथुंजिन !...
"मनडुं दुराराध्य तें वश आण्यूं, ते आगमथी मति आणुं
आनंदघन ! प्रभु ! माहरुं आणो, तो साचुं करी जाणुं.... हो कुंथुं...."[४३]

श्रीआत्मानदजी म सा इस मनके वशमे आनेवाले आत्माने क्या क्या बरदास्त किया उसका ,त्र उपस्थित करते हुए मनको शिक्षा देते हैं -

"समझ समझ वश कर मन इंद्री, परगुण संगी न हो रे, सयाना....
इनहीके वश सुद्ध बुद्ध नासी, महानंद रूप भूलाता
सांग धार जग नटवत् नाच्यो, माच्यो पर गुन गाता, वशकर...."[४४]

अन्य दर्शनकी मान्यता प्राप्त देव-देवीके विषयासक्त रूपका जो चित्रण उनके साहित्यमे मिलता है उनके प्रतिवाद रूप इन दोनों विद्वद्वर्योंने श्री अरिहतके अविकारी-निर्मल-त्रिभुवनमे उद्योतकारी, अद्वितीय एव अनूठे रूप-स्वरूपका वर्णन किया है । श्रीआनदघनजीके वामानदन-प्रभु पार्श्वनाथजी का वर्णन है

"प्रभु तो सम अवर न कोई खलकमें ।
हरिहर ब्रह्मा विगूते सोते, मदन जीत्यों तें पलकमें....,
ज्यों जल जगमें अगन बूजावत, बडवानल सो पीये पलकमें...
आनंदघन प्रभु ! वामाके नंदन, तेरी हाम न होत हलकमें.... प्रभु...."[४५]

श्रीआत्मानदजी म. श्रीमल्लिनाथ जिनेश्वरकी द्युति और कातिको शब्द देह देते है—यथा -

"सुचि तनु कांति, टरी अघ भ्रान्ति; मदन मर्यो तुम करम नीकंद ।
जयजय निर्मल अघहर ज्योति; द्योति त्रिभुवन निर्मल चंद..... मल्लि जिन ! दर्शन नयनानंद...."[४६]

षड्दर्शनके प्राज्ञ साधकोने जैन सिद्धान्तोके प्रचार-प्रसारके लिए साहित्यको ही माध्यम बनाया था। जिसमे पूर्वाचार्योकी विचारधारका भी उनको प्रचूर मात्रामे सहयोग रहा हैं। श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजीके "जैन दर्शन समुद्र और इतर दर्शन-नदियोके रूपकको श्रीआनदघनजी म ने श्रीनमिनाथ भगवतके स्तवनमे प्ररूपित करके षड्दर्शनके समन्वयको जिन दर्शनमें - विशेषतः जिनेश्वरके अंगरूप—किसविध पेश किया है यह दृष्टव्य है -

"षड्दर्शन जिन अंग भणीजे, न्याय षडंग जो साघे रे;
नमि जिनवरना चरण उपासक, षड् दर्शन आराघे रे.

(यहाँ जिनेश्वरके दो पैर सांख्य और योग; दो बाहु-सुगत और मीमांसक; कूख लोकायतिक (चार्वाक) और मस्तक-जैनदर्शन रूप वर्णित करके) -

"जिनवरमां सघळां दरिसन छे, दरिसनमां जिनवर भजना रे,
सागरमां सघळी तटिनी सही, तटिनीमां सागर भजना रे,
"चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति, वृत्ति परंपर अनुभव रे,
समय पुरुषनां अंग कह्या ए, जे छेदे ते दुर्भव रे" और अतमे इस श्रद्धाको अचल रखने हेतु गाते है - "ते माटे ऊभो कर जोडी, जिनवर आगळ कहिये रे;
समय चरण सेवा शुद्ध देजो, जेम आनंदघन लहिये रे. "[४७]

उसी तरह श्रीआत्मानदजी म सा भी जैन दर्शनकी श्रद्धाको दृढीभूत करते हुए जैन पचागी (निर्युक्ति आदि)के लोपकको मनुष्यजन्म हारकर ससारकी ओर भागनेवाले दर्शाते है

"समय सिद्धान्तना अंग साचा सबी, सुगुरु प्रसादथी पार पावे ।
दर्शन ज्ञान चरित करी संयुता, दाहकर कर्मको मोख जावे ।
जैन पंचांगीकी रीति भांजी सबी, कुगुरु तरंग मन रंग भावे ।
ते नरा ज्ञानको अंश नहीं आपनो हार नर देह समार धावे ।"[४८]

निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते हैं कि स्वाश्रित-अनुभवगम्य-निजानदकी मस्त यौगिकता और **विशुद्ध-निरुपाधिक-सादि अनत भाववाले परमात्म प्रेमकी स्वर लहरियाँ छलकानेवाले अवधू श्री** आनदघनजीकी कृतियोकी थाह पाना अथवा उसे कलमबद्ध करनेकी चेष्टा करना, यह समुद्रकी विशालता को बॉह फैलाकर प्रदर्शित करनेवाली बाल चेष्टा सदृश है; तो श्रीआत्मानदजीके पाडित्यपूर्ण भक्तियोग अर्थात् ज्ञान और **भक्तिका एक साथ-समान रूपसे समन्वय भी लेखिनीकी क्षमतासे परे ही है या केवल अनुभवगम्य ही** है। इन दोनो साधकोकी अध्यात्म योग युक्त आत्मिक खुमारीकी स्पर्शनाका सगीत कर्म और धर्म–परमात्म भक्ति और शक्ति-सिद्धान्त और साधनादि विभिन्न विषयोको झकृत कर गई है ।

<u>श्रीचिदानंदजी म.सा. और श्रीआत्मानंदजी म.सा.</u>:---

<u>परिचय</u>–सतजन व्यवहारातीत-धर्मातीत और साम्प्रदायिक सीमातीत होते है, साथ ही निःसग, निर्लेप और निस्पृही-आत्मालीन आराधक, सिद्धिके साधक, और उत्कृष्ट उपासक आत्मिक ज्ञान-ध्यान-कल्याणमे निमग्न होनेसे यह अति सभाव्य है कि, वे अपने बाह्य व्यक्तित्वकी पहचान, गच्छ या गुरु परपराका इतिवृत्त या प्रशसनीय प्रशस्तियोसे ऊपर उठे हुए होते हैं । उनके चरण चिह्न होते है उनका वाड्मय और उनकी परिचायक गुणगाथायें होती है, उनकी गीर्वाण गिरा–प्रवचनधारा या मधुर वाणी विलास । यहाँ एक ऐसे ही अध्यात्म प्रेमीका परिचय प्रस्तुत है ।

<u>जीवन तथ्य</u>– मुनिराज श्रीकर्पूरविजयजीने, 'श्री चिदानदजी (कर्पूरचदजी) कृत सग्रह भा-२' की भूमिका, 'शासन प्रभावक श्रमण भगवतो', सपा श्रीनदलाल देवलूकजी, पृ २७०, और 'कलिकाल कल्पतरु',ले श्रीजवाहरचद्र पटनी पृ २८३–इन सभी ग्रन्थोके आधार पर हम श्रीचिदानदजी म के 'जीवन वृत्तातको इस प्रकार आलेखित कर सकते हैं - **"श्रीकर्पूरचंदजी अपरनाम श्री चिदानंदजी म. बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे । श्रीआनंदघनजी म.की भाँति वे अध्यात्म शास्त्र रसिक और कुशल कविराज थे । वे महर्षि तीर्थस्थानोंमें सुविशेषतः निवास करते थे । श्रीशत्रुंजय और श्रीगीरनार तीर्थकी कुछ गुफायें और स्थान उनके नामसे अद्यावधि विख्यात है । उनका देहावसान श्री सम्मेत शिखरजी पर हुआ-ऐसी जनश्रुति है । वे एकाकी अवधूत अलिप्त रहना ही अधिक पसंद करते थे; और जहाँ तक हो सके लोक परिचयसे निवृत्त रहते थे । वे इतना सरल-अकिंचनसम-लघुतामयी जीवन जीते थे कि किसीको उनके अत्यन्त उत्तम ज्ञान और सिद्धि सम्पन्नताका अहसास भी नही होता था । अगर काकतालीय न्यायसे अनायास ही किसीको ज्ञात हो जाय, तब वे उस स्थानको त्याग कर अन्यत्र विहार कर जाते थे । उनकी लघुताने मानो प्रभुताके उच्चतम शिखरको छू लिया था । उन मनमौजी अध्यात्म योगी महापुरुषका विहार स्थल गुजरात-महाराष्ट्र-मालवा-राजस्थान-यू.पी. बिहार-बंगाल-पावापुरी-समेत शिखरजी भारतभरके अन्य तीर्थस्थानोमें माना जाता है; तो वाराणसी** आपका **शिक्षा-स्थान माना जाता है । इस प्रकार उनके नश्वर देहका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है।"**

इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्धमे अन्य सशोधनोके आधार पर भी 'श्रीचिदानद ग्रन्थावलि' पुस्तककी प्रस्तावना-पृ ७से१४मे श्रीभवरलालजी नाहटाने उनके जीवनकी विशिष्ट रूपरेखाका सहज भास दिया है, तदनुसार पालीतानामे प्रतिलिपित प्रतानुसार श्रीचिदानदजी खरतर गच्छके चतुर्थ दादासाहब श्रीजिनचद्र सूरिजीकी पट्ट परपराके श्रीपूज्योकी परपराके उपाध्याय श्रीरामविजयजीकी परपरामे काशीवाले श्रीनढाजीके शिष्य चुन्नीजी म के शिष्य श्रीकर्पूरचदजी (कल्याण चारित्र) उपनाम-श्रीचिदानदजी म के नामसे प्रसिद्ध थे। तीनो–गुरु, शिष्य, प्रशिष्य–आदर्श, त्यागी, वैरागी और आत्मिक आराधक थे । इतनी सूक्ष्म गवेषणा और अन्वीक्षणके बावजूद भी, वे उनके जन्म स्थान, समय, नाम, वश-कुलादि (गृहस्थावस्थाके) या दीक्षा स्थान-समय आदिके बोधसे अबोध ही रहे हैं । इनकी रचनाओसे व्यक्त होनेवाली विद्वत्तासे इतना कह सकते हैं कि, वे दार्शनिक एव आगमिक ज्ञानके गभीर अध्येता और अध्यात्म-योगादिकी गहन साधनारत अलगारी आत्मा थे। अद्यावधि प्राप्त उनकी रचनाओमे 'प्रश्नोत्तर माला'-वि स १९०६–को अतिम रचना मानी जा सकती है । क्योकि उन्होने अपनी जन्मादि घटना सदृश अपनी कृतियोके आविर्भावको भी गुप्त रखना ही उचित

समझा होगा, अथवा उस ओर उनका लक्ष्य ही नही रहा होगा । अत कवल चार कृतियोके रचनाकाल 'गोडी पार्श्वनाथ स्तवन'-१९०४, 'स्वरोदय ज्ञान'-१९०५ और 'दयाछत्तीसी' एव 'प्रश्नोत्तरमाला'-१९०६-प्राप्त होते है ।

<u>देहविलय</u>–वि स १९१८मे अचलगच्छीय श्रीभावसागरजीके शिष्यश्री रत्न परीक्षक जी द्वारा रचित 'श्री सिद्धगिरि तीर्थमाला' मे उनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है ·

"श्री चिदानंद चित्तमां वसे, अमर अमर पद होय....

"श्री चिदानंद गुरु धर्माचारय अनुभव श्रद्धा छायो,

सिद्धगिरिनी तलहटीए वांदी, चरण शुं प्रेम लगायो ।"[50]

इन प्रमाणोसे हम यह अदाजा लगा सकते है कि आपका देहान्त वि स १९१८ के एक दो साल पश्चात्-लोक प्रवादानुसार-श्रीसमेतशिखरजीमे होना सभवित है । श्रीसहजानदजी म जिन्होने शिखरजीकी उनके नामसे प्रसिद्ध उस गुफामे ध्यानस्थ दशामे स २०१० मे उनका साक्षात्कार किया था, तदनुसार उनकी देह-यष्टि श्रीमोहनलालजी म से साम्यता रखती है ।[51] श्रीमद् राजचद्रजी उनके साधनारत उदात्त जीवनके लिए अपना अभिप्राय देते है -**"वे प्रायः मध्यम अप्रमत्त दशामें रहते थे ।"**[52]

इस प्रकार उनके क्षर देह सबधी प्रस्तुतीकरणके पश्चात् अब उनके अक्षरदेहसे परिचय प्राप्त करे जिसने उनको अमरत्व प्रदान किया । अतर सवेदनाओकी पृथुलताको लक्ष्यमे रखते हुए उनकी चरम परिणतिको आत्मरतिमे परिणत करनेवाले उनके 'स्वान्त सुखाय वाङ्मयके अतरालकी गवेषणा करनेसे, उनमे अनायास ही अलकार, छद, प्रतीक, मानवीकरण, हरियाली (उल्टबॉसी) राग-रागिणिके विभिन्न प्रवाहोसे आप्लावित हृदयग्राही रस-प्रवाहसे पाठक भावित और प्रभावित हो जाता है, क्योकि उन्होने लिखनेके अभिप्रायसे आयासपूर्वक कुछ भी नही लिखा है । जो सहज स्फूत होकर शब्दोमे प्रस्फुट हुआ, वही उनके चिन्तनका एकदेशीय प्रतिनिधि हो गया है । मानो वे शब्द परिग्रहसे भी मुक्त रहना चाहते हो, अत उनका स्वय लिखित कोई पुस्तक या खरडा कहीं भी नही मिलता है । जो कुछ मिलता है, वह अन्य व्यक्तियोंके सरक्षण और सगुफनका ही परिणाम है । यही कारण है कि हम यह कह सकते है कि स्वान्त सुखाय रची गई रचनाये किसी भी प्रचार-प्रसारके दृष्टिबिन्दु विहिन थीं ।

<u>तुल्यातुल्यता</u>–दोनो सत प्राय समकालीन थे श्रीचिदानदजी म का देहविलय वि स १९२०मे प्राय माना जाता है जबकि श्रीआत्मानदजी म का १९५२ । लेकिन, एककी जीवनचर्या ही ऐसी थी कि उनके विषयमे आज उनके अक्षरदेहके अतिरिक्त प्राय ठोस प्रमाणित तथ्य प्राप्त नही होते है, उनकी नश्वर जीवनचर्याके विषयमे लेखिनी मौन है, जबकि दूसरेके जीवनके प्राय प्रत्येक प्रमुख प्रसगो पर उनके उत्तराधिकारी शिष्यवर्गने पर्याप्त प्रकाश प्रवाहित किया है । अत तुल्यातुल्यताके प्रसगमे हम उनके केवल वाङ्मय पर ही विचार विमर्श कर सकते है, जिसे इस प्रकारसे तुलित किया जा सकता है ।– (१) दोनों विद्वान महाकवियोने अपने काव्योमे सरल-अर्थगौरवयुक्त और हृदयगम बननेवाले भावोका चित्रण किया है । श्रीचिदानदजी म का प्राय पूर्ण साहित्य पद्यमे प्राप्त होता है, जबकि श्रीआत्मानदजी म का साहित्यका महदश गद्यबद्ध है फिरभी बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी आचार्य प्रवरश्रीने पद्यको भी पूर्ण न्याय दिया है । (२) दोनोके काव्योमे विषय वैविध्यकी दृष्टिसे देखे तो उनके साहित्य नभाचलमे इन्द्रधनुषी आभा सदृश अध्यात्म चितन और योगसाधना जैन दार्शनिकता और जैनागमिक सिद्धान्त एव जिनभक्तिके विविध स्वरूप,–आत्मसमर्पण आदिकी प्ररूपणा प्राप्त होती है । (३) दोनोके काव्योमे अगाध कल्पनाशक्ति, अपूर्व अलकार आयोजन, अदभूत प्रतीक योजनाये, अमूर्तभावोका मानवीयकरणादिकी सतुलनयुक्त सजावट काव्य सौदर्यकी आभाको प्राणवान् बनाती है । (४) दोनोके पद्योमे विविध राग-रागिणीकी नियोजना गायक और श्रोताको मत्रमुग्ध एव तदाकार बनानेकी क्षमता रखती है । अत उन्हे सभी अच्छी तरह गाकर निजानद मस्तीके रसास्वादनका आनद लूट सकते हैं । (५) दोनोके पद्य–स्तवन, सज्झाय पदादि गीत काव्य प्रकारोमे समाहित किये

गये है । श्री चिदानदजी म.के पूजा काव्यके विषयमे श्रीभवरलालजी नाहटाने अपना अन्वेक्षिक अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त किया है - **"हमें एक मत्रहभेदी पूजा उपलब्ध है, पर इस समय हमारे पास न होनेसे प्रकाशित नहीं कर सके ।"**[54] लेकिन इसका अन्यत्र कही भी उ... प्राप्त नही होता है जबकि श्री आत्मानदजी म.सा.की पाँच पद्य कृतियाँ पूजा प्रकारकी प्राप्त होती है । (६) श्री चिदानजी म.सा.की **'स्वरोदय ज्ञान'** कृति श्वासोच्छ्वासके नियमन और उनके शुभाशुभ परिणामोका परिचय देती है, तो श्री आत्मानदजी म.सा.ने उसी विषयकी प्ररूपणा अपने **"जैन तत्त्वादर्श"** ग्रन्थमे नवम परिच्छेदके प्रारम्भमे प्रस्तुत की है यथा

"स्वरका उदय **पिछाणिए, अतिही थिर चित धार, ताथी** शुभाशुभ कीजिए, **भावि** वस्तु विचार ।।"[55]

"तत्त्वज्ञ श्रावकको तत्त्वविचार करना चाहिए, जो पांच है - पृथ्वी, जल, अग्नि, **वायु,** आकाश।... **पाच तत्त्वोंकी पहचान--नासिकाकी पवन ऊँची जावे** तब अग्नि **तत्त्व, नीचे** जावे तब-जल तत्त्व, **तिर्च्छी** जावे तो वायु, **सुधी तिर्च्छी जावे तो पृथ्वी और नासिकाके अदर बहे बाहर न निकले तब आकाश तत्त्व जानना..."**[56] **इत्यादि** अत्यन्त विस्तृत स्वर विचार प्ररूपित किये है । (७) श्री चिदानदजी द्वारा अपनी रचनाओको लिपिबद्ध न करनेके कारण उनकी रचनाओमे, विशेषत फुटकल पदोमे अन्य लोकगीतादि या अन्य कवियोकी रचनाओका मिश्रण हो गया है, जबकि श्रीआत्मानदजी म.की प्रत्येक रचना प्रमाणित रूपमे उनकी अपनी ही है । उन दोनोकी कृतियोमे अतर्निहित भावोका अनुशीलन करने पर कुछ दृश्य नजरमे आते है उसे इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है । यथा--ऊँकार प्रणवमत्र-बीजमत्र माना गया है अत सर्वदर्शनमे उसका माहात्म्य स्वमत कल्पनासे किया गया है । वैसे ही ऊँकारको जैन दर्शनमे आराधनाके प्रमुख केन्द्र रूप पच परमेष्ठिको समन्वित् करनेवाले मगलकारी-कल्याणमयी बीजमत्रके रूपमे आराधित किया जाता है जिनका दोनो कवीश्वरोने यथोचित वर्णन 'सवैया इकतीसा' छदमे अपनी अपनी कृतियोके मगलाचरण रूपमे किया है-यथा-

"ॐकार अगम अपार प्रवचनसार, महाबीज पंच पद गरभित जाणीए"....[57]

"ॐ नीत पंचमीत, समर समर चीत, अजर अमर हीत नीन चीत धरिए,
सूरि उज्झा, मुनि पुज्जा, जानत अरथ गुज्जा, मनमथ मथन कथन सुं न ठरिए ।
बार आठ षटतीस पणबीस सातबीस शतअठ गुण ईश माल बीच करिए ।
एसो विभु ॐकार बावन वरण सार, आतम आधार पार, तार मोक्ष वरिए ।"[58]

'अहिसा परमोधर्म' स्वरूप जैनधर्ममे अभयदान प्रधान जीवदयाका अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकृत है । यहाँ तक उपदिष्ट है कि प्राण न्योछावर करके भी उसकी पालना-कर्तव्य समझा गया है । उस जीवदयाके प्रमुख आठ भेद माने गये है - जिसे श्रीआत्मानदजी म.सा.ने अपने स्तवनमे इस प्रकार गुफित किया है -

"दरव, भाव, स्वदया मन आणो, पर, स्वरूप, अनुबंधो रे,
व्यवहारी, निहचे, गिन लीजो, पालो करम न बंधो रे, .भविकजन
"षटकाया रक्षा दिल ठानी, निज आतम समझानी रे,
पुद्गलिक सुख कारज करणी, स्वरूप दया कही ज्ञानी रे . भविकजन ."[59]

जबकि श्री चिदानदजी म.ने अपनी 'दया छत्तीसी' रचनामे स्वरूप दया और अनुबध दयाका विशेष रूपमे वर्णन किया है और निष्कर्ष रूपमे विवेकसे ही दयाका महत्त्व स्थापित किया है-श्लोक २२ । आगे चलकर 'वैदिकी हिसा हिंसा न भवति' की विचारधाराको ठोस प्रत्युत्तर देते हुए कहते है कि रुधिरका रग रुधिरसे साफ नही हो सकता वैसे ही हिंसासे व्युत्पन्न पापकी निर्मलता दया रूपी निर्मल नीरसे धोनेसे ही हो सकती है । बिना भावदयाका कायक्लेश कष्ट रूप क्रियाकी निष्फलताका निरूपण करते हुए मोह प्रपचका चित्रणभी करके अतमे दया-नाव द्वारा भवपार होनेके स्वरूपको वर्णित किया है -

"दया रूपी तरणी विवेक पतवार **जामें; दुविध सुतप रूप खेवट लगाइये ।**

दांडा ये चतुर चार, कीजिए शुं अघवार; मालिम सुमन ताकुं तुरत जगाइये ।
फल शुभ ध्यान मन ताणके तैयार कीजे; शुभ परिणाम केरी तोप ज्युं दगाइये ।
चिदानंद प्यारे ! ऐसी नावमें सवार होय; मोहमगी सरिताकुं वेग पार पाइये ।।"[59]

इस विश्वकी सर्व वस्तुएँ नाशवत है । हम। जीवन भी क्षणभगुर है । किस पल सजा-सजाया उपवन उजड जायेगा कोई भरोसा नही । दार्शनिकोने भी इस विनश्वरताको सिद्धान्तोमे बाधा है तो साहित्यिकोने अपनी कल्पना-पखो पर चढ़ाया है । जीवन व्यवहारमे भी हम उसका अनुभव कदम कदम पर करते है । उसीको निर्दिष्ट करते हुए उपकारी गुरु भगवतोने हमे सावधान करते हुए इसका चित्रण किया है । श्री चिदानदजीके शब्दोमे -

"छीजत छीन छीन आउखां, अजलि जल जिम मीन: काल चक्र माथे भमत, सोवत कहा अभीत ।"
तन-धन-जोबन कारिमा, सध्या रंग समान, सकल पदारथ जगतमें, सुपन रूप चित्तजान ।"[60]

अनेक भोगमे विलसित कायाकी माया करने पर भी अतमे क्या हाल हुआ, उसका चित्रण श्रीआत्मानदजी म के शब्दोमे -

"रंग बदरंग लाल मुगता कनक जाल पाग धरी लाल राचे ताल तानमें
छिनक तमासा करी, सुपनेसी रीत धरी, ऐसे वीरलाय जैसे बादल विहानमे..
"योवन पतंग रंग, छीनकमें होत भंग, सजन सनेहि संग विजके-सा जमको .
"काची काया मायाके भरोसे भमियो तुं बहु नाना दुःख पाया, काया जात तोह छोरके...."[61]

जैन दर्शनानुसार यह अस्थिर ससार केवल पुद्गलका प्रपच जाल है और आत्मा उससे एकदम भिन्न निर्मल स्वरूपी उन नाटकीय रगोसे विमुक्त है । लेकिन कर्म पुदगलोसे वेष्टित उसमे क्षीर-नीरवत्, दधि-नेह या अभ्र-मेहवत् एकमेक हो चूका है । उसे सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र, तप-जप-ध्यानादिके प्रयोगसे शुद्ध किया जा सकता है । उस उपदेशामृतका आस्वाद कराते हुए श्रीचिदानदजी म को सुनिये -

"सुअप्पा ! आप विचारो रे, पर पक्ष नेह निवारो रे

यहाँ कनक-उत्पल, दूध-घृत, तिल-तेल, कुसुम-सुवास, काष्ट-अग्नि आदिको क्षीर-नीरको भिन्न करनेवाले हंस सदृश भेद-ज्ञान युक्त दृष्टि प्राप्त होने पर क्या होता है?-

"अजकुलवासी केहरी रे, लेख्यो जिम निज रूप
चिदानंद तिम **तुम हु प्यारे, अनुभवो शुद्ध स्वरूप.."[62]**

श्रीआत्मानदजी म बारह भावनामे **'अन्यत्व भावना'को** प्ररूपित करते हुए यह बात स्पष्ट करते है कि, जब आत्मा क्षीर-नीरवत् कर्म पुद्गलकी माया छोडता है तब स्व स्वरूपको प्राप्त कर लेता है।

"आतम सरूप धाया, पुग्गलकी छोर माया, आपने सदन आया, पाया सब घिन्न है ।"[63]

इस पुद्गलकी अद्भूत मायाका चित्रण श्रीचिदानदजी म ने अपनी *'पुद्गल गीता'* कृतिमे स्पष्ट करके आत्माकी (चेतनकी) बेहाली और पुद्गल-सग त्यागसे साध्य-प्राप्तिको वर्णित किया है ।

"पुद्गल पिंड लोलुपी चेतन,जगमें राक कहावे; पुद्गल नेह निवार, पलकमें, जगपति बिरुद धरावे ।".[64]

इस प्रकार पुद्गलकी माया (अनित्यता) समझनेके पश्चात जीवको धन कण-कचन-कामिनिका मोह नहीं रहता । उस सरिता सदृश सरकनेवाली सपत्तिका सदुपयोग करके उसे सफल बनानेका उपदेश श्रीचिदानदजी म देते है -

"धन अरु धाम सहु पडयो ही रहेगो नर, धारके धरामेंतु तो खाली हाथ जावेगो,
दान अरु पुण्य निज करथी न कर्यो कछु, होयके जमाई कोई दूसरो ही खावेगो ।
कूड अरु कपट करी, पापबध कीनो तात, घार नरकादि दुःख तेरो प्राण पावेगो;
पुण्य बिना दूसरो न होयगो सखाई तब, हाथ मल मल माखी जिम पसतावेगो ।"[65]

श्रीआत्मारामजी म अपने चेतनको उपदेश देते हुए सावधान करते है कि अठारह पापस्थानक सेवन करते

करते जो रिद्धि सिद्धि प्राप्त की है, उसे अगर धर्मकार्यमे न लगाकर जमीनमे गाड़ा या दुरुपयोग किया तो वह सपत्तिका उपभोग तो अन्य करेगे और वे पाप तेरे सिर चढेगे । मृत्यु पश्चात् दान देनेके लिए तुझे कोई न कहेगा ।

"रिद्धि सिद्धि ऐसे जरी, खोदके पातार धरी, करथी न दान करी हरि हर लहेगो.....

जौलों मित आन पान तौलों कर कर दान, वसेहुं मसान फेर कौन दे दे कहेगो....."[६६]

सामान्यत प्रिय पदार्थ सुहावना और सुदर ही लगता है । भक्त भी जब ससारकी अनित्यता, पुद्गलके खेल और आत्माकी अमरता परख लेता है उसे शाश्वत परमतत्त्व परमात्मासे प्रीति हो जाती है और अपने प्रभुके अलौकिक रूप दर्शनसे नयनोकी धन्यताके मनभावके स्वर बरबस फूट पडते है-यथा

"**अखियाँ सफल भई, अलि, निरखत नेमि जिणद,**

केसे है नेमि जिणंद ?-"**पद्मासनमें शोभित, सुर-नर-इन्द्रको** मोहनेवाले, घुंघराली-**अनुपम-अलख, मुख-पूनम** चंद, **नयन-कमलदल, शुकमुख** नासा, अधर **बिंब, दंतपंक्ति-कुंद** कली, कम्बु ग्रीवा, **भुजा कमलनाल, हृदय-विशाल थाल, कटि-केसरी, नाभि-सरोवर खंद..... "चिदानंद आनंद मूरति ए शिवा देवी नंद..."[६७]**

श्रीआत्मानदजी म के श्रीविमलनाथ भगवतके पद्मसम चरण-सरोज और नीके-नयणका वर्णन भी आकर्षक है

"पद्म राग सम चरण करण अति सोहे नीके, तरुण अरुण सित नयण वयण अमृत रस नीके ।

वदन चंद ज्यूं सोम मदन सुख माने जीके, तुझ भक्ति विन नाथ रग पतंग ज्यूं फीके-"[६८]

जब जीव पुद्गलकी माया त्यागता है तो अपने आप ही परमात्म भक्तिके चोलमजीठ रगमे रग जाता है । ऐसे रगसे रगी आत्मा मिट जाय-मरजाय-खत्म हो जाय, साथ नही छोडती । श्रीचिदानदजी म का दिल जिन चरणोमे कैसा लगा है । -

"लाग्या नेह जिन चरण हमारा, जिम चकोर चित चंद पियारा..

जैसे कुरंगके मनमें नाद (संगीत), मेघमें चातकका स्नेह, दीपक पर पतंगका हेत, जलमें **मीनकी** मग्नता, **हंसका आधार मानसरोवर,चोरको अंधेरी रात,मोरकी थिरकन**-गर्जता मेघ,**केतकी पुष्पमें भ्रमर क्रेद** रहता है वैसे-

"जाका चित्त जिहां थिरता माने, ताका मरम तो तेहि ज जाने ।

जिन भक्ति हिर्दैमें ठान, चिदानंद मन आनंद आने ।"[६९]

इसी तरह श्रीआत्मानदजी म भी श्रीअनतनाथजी भ से 'नीकी प्रीति' जोडते है और अपनी प्रीतको प्रकृति और व्यवहारके अनेक प्रतीकोके साथ मूल्याकित करके प्रभुको 'सिर सेहरो और 'हियडानो हार' ... है-

"जिम पद्मनी मन पिउ वसै, निर्धनीया हो मन **धनकी प्रीत** ।

मधुकर केतकी मन वसे, जिम साजन हो **विरही जन चीत** ।।

करसन मेघ अषाढ ज्यूं, निज वाछड हो **सुरभि जिम प्रेम** ।

साहिब अनन्त जिणंद शुं, मुझ लागी हो, **भक्ति मन** नेम ।। "[७०]

कविराज श्रीचिदानदजीम परमात्म भक्तिमे ओतप्रोत, भगवतसे ऐसी आत्मीयता प्राप्त कर लेते है कि जैसे स्वजन सदृश उपालम्भ देते हुए श्रीनेमिनाथजीके साथ विपत्तिमे साथ-सहयोग देनेवाली विरलताका सधान करते है

"**मोह** महा मद **छाकथी, हुं छकियो** हो, नही शुद्धि लगार,

उचित सही **इण अवसरे, सेवकनी** हो, करवी सभाल ।

मोह गया जो तारशो, तिण वेला हो कहो कुण उपकार,

सुख वेला सज्जन घणा, दु:खवेला हो विरला ससार ।।"[७१]

श्रीआत्मारामजी म भी अतर आशा विश्रामधाम श्रीपरमात्माको उत्तमजनकी रीति जताते हुए मुर्ख-बालक निंदक-अपराधीको भवपार उतारकर, अजरामर पद प्रदान करनेके लिए श्रीआदिनाथको विनती करते है -

"तुम बिन तारक कोई न दिसे,होवे तुमकुं क्युं कहिये,इह दिलमें ठानी, तारके सेवक, जगमें जस लहिये। .

अवगुण मानी परिहरस्यो तो,आदि गुणी जग को कहिये;जो गुणी जन तार,तो तेरी अधिकता क्या कहिये?"[30]
श्रीचिदानदजी म परमपद प्राप्तिके लिए स ज्ञान रूप सुमति द्वारा प्रियचेतन (आत्मा) को परघर जानेवाले के हालात सुना कर आत्माको कुमति-नेह-निवारके' शिवपुरका राज्य लेनेके लिए अनुनय करते है -
"पिया ! पर घर मत जावो रे... करी करुणा महाराज ।
कुल मरजाद लोपके रे, जे जन परघर जाय; तिणकुं उभयलोक सुण प्यारे, रंचक शोभा नाय... पिया...
घर अपने वालम कहो रे,कोन वस्तुकी खोट। फोकट तद किम लीजिए प्यारे,शीश भरमकी पोट.. पिया.."[31]
श्री आत्मानदजी म भी श्री ऋषभदेवको करबद्ध प्रार्थना करते है कि "आप मेरे मन मर्कट को कुछ सीख दे जिससे वह समताके रगमे रग जाय और आत्मकल्याणमे लग जाय

"मन मर्कट कुं शिखो, निजघर आवंजी म्हारा राज रे काइ !
समता रंग रंगावेजी म्हारा राज रे, रिखवजी थाने मनरी "[32]

इन सबके निष्कर्ष रूप आतम घटमे अनुभव ज्योत जगनेसे कुमताका सग तोड, सुमतासे सगाई जोड, प्रभुचरणोमे अचलत्व प्राप्तकर्ता आत्माका चित्रण श्रीचिदानदजी म करते है -

"अनुभव ज्योति जगी छे, हिये अमारे बे, कुमता कुटिल कहा अब करि हो, सुमता अमारी सगी छे
मोह मिथ्यात्व निकट नवि आवे, भव परिणति ज्युं पगी छे
'चिदानंद' चित्त प्रभुके भजनमें, अनुपम अचल लगी छे.."[33]

श्रीआत्मनदजी म के 'सुज्ञानी'ने भी इंद्रिय और चचल-मन वशकरके, दुर्नय मिटाकर स्याद्वादामृत पिया है

"तें तेरा रूप कुं पाया सुज्ञानी.....
सुगुरु, सुदेव, सुधर्म रस भीनो, मिथ्या मत छिटकाया रे .
धार महाव्रत समरस लीनो, सुमति गुप्ति सुभाया रे
आत्मानंदी अजर अमर तुं सत्चिद् आनंद राया रे. "[34]

श्रीरामभक्त संत तुलसीदासजी और श्रीजिनचरणोपासक श्रीआत्मानंदजी म.सा.:--

साहित्यिक कलाकार और भगवद् भक्तके दुहरे व्यक्तित्वके समवायी स्वामीके जीवनगत अनुभवाधारित सृजनराशिमे विविध जीवन दृष्टियोकी धूपछॉव और विचारोमे विकासशील परिवर्तनके सबधका परिशीलन करने पर एकागी आदर्शवादसे महाकाव्यात्मक भव्यता एव आध्यात्मिक उन्मेषमे मर्यादा पुरुषोत्तमके रूप स्वरूपयुक्त महत् ललित रचनाओके उपवनसे गुजरते गुजरते आदर्शसे यथाथ, उल्लाससे ·ये, महाकाव्यात्मकतासे वेणु प्रगीतात्मक– पद, कवित्त, सवैया रूप-वैयक्तिकताकी ओर चरण बढानेवाले, समष्टिसे व्यक्तिकी ओर, 'मानस' 'कवितावली'के वैयक्तिक, अतर्भुक्त भावनाओ और अनुभावोको प्ररूपित करनेवाले, लोकमगलमय गीतोको स्वर देकर यथार्थकी ठोस भूमि पर लाकर श्रीरामके उस मगलकारी, नूतन बोधात्मक स्वरूपको गुजरित करनेवाले परमपद दायक-मगल विधायक-परमप्रेयान नर–रामको उभारनेवाले सत, परमभक्त चूडामणि महान काव्यकार, फिरभी सामान्यता लिए रामभक्तिके दैन्य-दास्य रूपधारी, सर्वाग सपूर्ण समर्पित रामचरण किंकर श्री तुलसीदासजीका व्यक्तित्व ताज्जुबमय विलक्षणता सजोये हुए है ।

<u>जीवन तथ्य</u> – सामान्यत आतर्व्यक्तित्व, जितना ऊपर उठा हुआ होता है, व्यक्ति स्वनाम-कामसे उतना ही निर्लिप्त भाव रखने लगता है । उन भौतिक मोह-विजयियोके जीवनवृत्त अतीतके गर्भरूप रहस्यमय बन जाते है । अत उन तथ्योके लिए हमे जनश्रुति आदि बहिर्साक्ष्य और वाङ्मयरूप अतसाक्ष्य पर निर्भर रहना होता है । गोस्वामीजीके बारेमे भी यही सत्य सामने आता है । इनके जन्मके लिए वाह्य प्रमाणाधारित वेनीमाधवदास और महात्मा रघुवरदासजी कृत इनकी जीवनी अनुसार इनका जन्म स १५५४ श्रा शु ७ दर्शाया है, जबकि प रामगुलाम द्विवेदी, सरजोर्ज ग्रियर्सन एव आ रामचद्र शुक्लादि विद्वानोके अनुसार वे स १५८९मे राजापुरमे जन्मे थे, जो अत साक्ष्याधारित अधिक युक्तियुक्त माना जा सकता है। लाला सीताराम, गौरीशकर द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी और डॉ रामदत्त भारद्वाज–'सोरो'को उनका जन्म

स्थान मानते हैं ।

उनके माता-पिता और बाल्यावस्थाके लिए यह मान्यता है कि, उनके पिता श्रीआत्माराम दुबे और माता हुलसी-पत्नी`ना दुबे-थे । जबकि 'तुलसी-चरित' अनुसार उनकी पितृ परपरा है-- परशुराम मिश्रके पुत्र 'शकर'के पुत्र 'रुद्रनाथ'के पुत्र 'मुरारि'के पुत्र तुलाराम-- तुलसीदासजी हुए ।[७७] तुलसीजीके गुरुका नाम नरहरिदास था । उन्होंने निम्नांकित शब्दोमे 'नर रूप हरि' को वदनाकी है -

"बन्दउं गुरु पदपंकज कृपासिंधु नर रूप हरि"[७८]

गोस्वामीजीका विवाह भारद्वाज गोत्रके ब्राह्मण श्री दिनबंधु पाठककी बेटी-रत्नावलीसे हुआ था । पत्नीमे अत्यन्त आसक्त तुलसीको एक बार मायके गई हुई पत्नीके पीछे पीछे जाने पर पत्नीसे मधुर भर्त्सना मिली - **"लाज न आवत आपको दौरे आयेहु साथ, धिक् धिक् ऐसे प्रेमको कहा कहहु मैं नाथ ।"** और आगे परमात्म प्रीतिकी ओर मोड देते हुए कहती है - **"अस्थिचर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति, होती जो श्री राम महं होति न तो भवभीति"** । इन वचनोके प्रत्याघातसे जागृत विवेकने उन्हे श्रीरामकी परमभक्तिरस सरितामे स्नान करनेका मार्ग प्रशस्त किया और राम भक्ति प्रदर्शित करनेवाले विशद वाङ्मयकी रचनाकी ओर उन्मुख किये ।[७९]

साहित्यकारके जीवन प्रसंगोका उनके साहित्य पर गहरा प्रभाव पडता है । जन्मते ही माता-पितासे त्याज्य इस अनाथ और अभागे बालकके भाग्यमे ब्रह्माने भी कुछ भलाई नही लिखी - **"मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधि हू न लिखि कुछ भाल भलाई।"[८०]** अत वह मुहसे 'रामनाम' बोलता था, टूकटाक मांगकर खाता था **(हनुमान बाहुक-४०)** कगाल हालतमे रोटीके टूकडेके लिए दर-दर डोलनेवाले इस 'रामबोला'को केवल चार दाना चनेकी प्राप्ति पर इतनी प्रसन्नता होती थी मानो उसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-चार फल प्राप्त हुए हो **(कवितावली-७/७३)** रामबोलाकी ओर देखकर दु:खको भी दु:ख होता था **(विनय पत्रिका-२२७)** । रामकथा गायनने ही उसे किसी तरह जिंदा रखा । **"तुलसीकी बौद्धिक** उपलब्धि **सीमित थी । अतः लोकजीवन, लोक परंपरा और लोकचित्तके धरातल पर उसके भावुक हृदयकी** थिरकन **बजती रहती थी ।"[८१]** **जबकि डॉ. नगेन्द्रजीके अनुसार "विनय पत्रिका आदि अंतःसाक्ष्यके आधार पर पिता द्वारा छोड़ दिये जाने पर बाबा नरहरिदासजीने इनका पालन पोषण किया और ज्ञान-भक्तिकी शिक्षा-दीक्षा भी दी ।"[८२]** श्रीआत्मानदजी म सा को भी बचपनमें हार्दिक-वात्सल्यता और स्नेहमय सरोवर तुल्य माता-पिताने अतीव मजबूरीमे बेटेके उज्ज्वल भविष्यके लिए, निरुपाय बनकर, अपने मित्र जोधाशाहजीके सुपुर्द किया था, जहॉ उन्हे बडे इत्मिनान और गौरवयुक्त-योग्य परवरिश और धर्म-सस्कार एव ज्ञानार्जनकी सुविधा मिली । फल स्वरूप किशोरावस्थामे ही वैराग्यमय सस्कारोसे वासित होकर उन्होने साधुवृत्ति स्वीकारी । वहॉ परभी ज्ञान-पिपासाको तृप्त करनेका यथायोग्य सुअवसर उन्होने प्राप्त किया । अत उनकी रचनाओमे हमे वह बौद्धिक, दार्शनिक ज्ञान विहारका अनुभव मिलता है जो सच्चे ज्ञानीकी परख करवानेको पर्याप्त है । इस प्रकार तुलसीका वैराग्य मोह या दु:खगर्भित तना और श्रीआत्मानदजी म का ज्ञानगर्भित ।

परिणाम यह हुआ कि **"कालांतरमें इन्द्रिय दमन करने, कुत्सित दरिद्रता झेलने, सर्वस्व त्याग देने और भक्ति रसका प्रचार करनेके बाद भी जब तुलसी पर धूर्त, कुसाज करनेवाला, दगाबाज, महादुष्ट ओर कुजातिका होनेके लांछन लगते हैं (कवितावली-७/१०६-१०८), तब वे** तिलमिला उठते **हैं ..... उनके पौराणिक पुनर्जागरणके महान स्वप्न लड़खड़ा जाते हैं ।[८३]** काशीके ठग और चोरोसे सताये जाने पर वे अनुभव करते हैं कि 'मेरा मन ऊँचा है, रुचि भी ऊँची है, लेकिन भाग्य अत्यन्त नीचा है । उन्हे आश्चर्य होता है कि भगवतके नेकदिल भक्त होने पर भी उन्हे ये त्रिताप क्यो भोगने पड़ते हैं ? राम हनुमान-शकरादिसे क्या नही हो सकता ? **(ह.बा.-४४)** फिर भी नजर पथ पर परिणाम शून्यता प्राप्त होनेसे **"उनके जीवन पर्यंतके श्रद्धा-विश्वासके आगे एक गूढ प्रश्न चिह्न लग जाता है । इसके बाद तुलसीका व्यक्तित्व और कृतित्व ज्ञात नहीं होता है ।"[८४]**

तुलसीदासजीकी यह उलझन व्यक्तिगत नही समष्टिगत है; जिनके परमात्मा होते तो है सृष्टिसृष्टा-सर्वशक्तिमान-सर्वेसर्वा-कल्पना सृष्टिके इष्टदेव लेकिन उनके दुःख दर्दोंके हर्ता नही बन सकते, उनकी वास्तविकतामें कोई चमत्कारी जादू नहीं कर सकते और उसे परिवर्तीत नही कर सकते हैं. क्योंकि जैन दर्शनानुसार परमेश्वर सृष्टा नही केवल दृष्टा होता है । जैन दर्शनका कर्मवाद इन उलझी गुत्थियोंको सुलझाकर समझाता है कि प्रभुकी प्रीति और भक्ति कर्मनाशमें केवल निमित्त बनती है । ईश्वर तो वीतराग है-न किसीसे प्रेम न किसीसे द्वेष, न किसीको तारना न किसीको ताड़ना– वे कुछ भी नहीं करते हैं क्योंकि वे निरागी और कृतकृत्य हैं । श्रीआत्मानदजी म.के जीवनमे भी अनेकबार कठिनाइयाँ आयीं। आयुके अतिम समयमे आहार-पानीके अप्राप्ति रूप सकटसे जीवलेवा बिमारीने आ घेरा, फिर भी उनकी आस्था पर कोई सकट नही आया । निश्चल-दृढ आस्थासे स्वस्थता-समभाव और अर्हनके प्रति शरणागत भावसे, सकल जीवराशिसे क्षमापना प्रार्थना और मैत्री भावनाकी उद्घोषणाके साथ अतर्लीन-ध्यानस्थावस्थामे देहत्याग करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । इससे स्पष्ट है कि यदि साधक जैन दर्शनके प्रति ज्ञान गुम्फित श्रद्धा सम्पन्न है, तब साधनाकी स्थिरता-साधकभाव-सर्वदा अडोल रहता है । दुःख-दर्द-आधि-व्याधि-उपाधि युक्त जीवनके अनहोने किसी भी मोड पर वह आत्माको धैर्य प्रदान करते हुए तन-मनके परितापको प्रशात बना सकता है ।

दोनोकी परमात्माकी प्रीति और भक्ति ही उन्हे सत कोटिमे स्थापित करनेको काबिल हुई है। दोनोकी अनन्य सेवा उनके स्वामीसे किस प्रकार फल-प्राप्तिकी श्रद्धा प्रतिष्ठित करवाती है-दृष्टव्य है, रामशरणमें आकर ही 'सनाथ' होनावाले तुलसी, लक्ष्मी भी जिनकी प्रसन्नता चाहती है ऐसे रामको छोड कर अन्यत्र याचना करनेसे क्या होता है उसका वर्णन इन शब्दोमे करते हैं-

"...ताको कहाय, कहैं तुलसी, तू लजाहि न मांगत कूकुर कौर हि।
जानकी जीवनको जन हवै जरि जाऊ सो जीह जो जांचत और हि।।"[८५]

श्रीआत्मानंदजी म.सा.की भी अपने अक्षय भडारी- दीनानाथसे याचना श्रोतव्य हैं-यथा-

"प्रभुजी नहीं तो चिंतित दायक, लायक सौ न कहाय
त्रिभुवन कल्पतरु में जाच्यो, कहो किम निष्फल थाय।"[८६]

दोनोंकी अटल-अचल-अखड आस्था- "दोष दुःख दारिद दलैया, दीनबंधु राम।
तुलसी न दूसरो दया निधान दुनीमें....(कवितावलि-७.२१)

"जिन और न दाता कोय-अभय, अखेद, अभेद नो; जिनराया रे ....
जिन, सगरे देव निहार, कौन हरे मुझ कैद नो, जिनराया रे ....
त्रिभुवन पूरणचंद...." (चतु.जिनस्त.१०)

मध्यकालीन वाङ्मयकी भक्तिधारामे प्रवाहित होनेवाले दो प्रवाह-निर्गुण और सगुणकी परस्पर पूरकता और प्रमाणिकताका आलेखन करते हुए 'दोहावलि'मे दोनोका सम्बन्ध स्पष्ट किया है -

"ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुण कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास"-(२५१)
"अंक अगुन अखर, सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
खोएँ राखें आपु भले, तुलसी चारु विचार।।"(२५२)

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म अक (१,२,३) समान है और सगुण ब्रह्म अक्षर (शब्द) सदृश। अकोको शब्दोमे लिख देनेसे कभी भ्रमकी उपस्थिति या वध-घटकी सभावना नही रहती, प्रत्युत वह अधिक प्रमाणिक माना जा सकता है। इसी प्रकार श्रीआत्मानदजी म.सा.भी पक्ष-कदाग्रहको छोडकर ससार पार करवानेवाले आनद रूपको धारण करनेकी सीख देते हैं-

"पक्ष कदाग्रह मूल नहीं तानियो, जानियो जैन मत सुध सारो।

महासंसार थकी नीकली करत आनंद निज रूप धारो।"

संपूर्ण जैनमत-स्वरूप जान लेनेसे उन सगुण-निर्गुणके कदाग्रह-पक्षापक्षीके मूलका ही नाश हो जाता है और **स्वरूप** रमणताका आनद उभरता रहता है।

सगुण-निर्गुण सदृश सैद्धान्तिक धाराओमे द्वैत और अद्वैतका तरगे झुलती रहती हैं। कई विद्वानोने भक्तिके लिए द्वैत भावका होना अनिवार्य माना है क्योकि भजन-भक्ति आदि परमात्माको भिन्न मान कर ही की जाती है। जब आत्मा-परमात्माका अद्वैत होगा तो कौन किसकी भक्ति करेगा? वही भक्तिकी लहर तुलसीके अतरतार झकृत कर देती है-

"प्रन करि हौं हठि आज तैं, रामद्वार पार्यो हौं।

'तू मेरो' यह बिनु कहे, उठि हौं न जनम भरि; प्रभुकी सौं करि निबर्यो हौं।।"....

श्रीआत्मानदजीके भी वैसे ही भाव- **"मुख बोल जरा, यह कह दे खरा; तू और नहीं मैं और नहीं**

"तुं नाथ मेरा, मैं हूं जान तेरी, मुझे क्युं बिसराइ जान मेरी"....

आगे चल कर उन्हे लगता है, मेरी भक्ति फलित हुई है तो कैसे झूम उठे हैं।-

"अब करम कटा और भरम फटा, तूं और नहीं मैं और नहीं।"[८७]

यहाँ कवीश्वरने द्वैत भावमे अद्वैतके भावकी कल्पना कैसे सुदर अभिनिवेशमे की है?- जो जैन दर्शनकी निजि विशिष्टता मानी गई है।

दोनो कविवर्योंकी रचनामे स्थान स्थान पर हमे दासता या दैन्यता छलकती नजर आती है- जो किसीभी भक्तके कल्पना साम्राज्यकी स्वकीयाके रूपमे प्राप्त होती है। स्वामी-सेवक भावकी अनुपस्थितिमे सर्वस्व समर्पणका अभाव होता है, इसकी शून्यतामे सिद्धिकी साधना अपूर्ण ही रहेगी। लक्ष्य प्राप्ति हेतु स्वको सर्वके साथ, आत्माको परमात्माके साथ क्षीरनीरवत् करना आवश्यक है।

"हम चाकर रघुबीरके, पटौ लिखौ दरबार, तुलसी अब मनसबदार...."

"तहै न फूटी कौडिहू, को चाहे केहि काज सो तुलसी महंगो कियो, राम गरिबनेवाज।।"

श्रीआत्मानदजी म भी उस जगतारक-जगदीश्वरको विनती करते हैं–

"जगतारक, जगदीश, काज अब कीजो मेरो, अवर न शरण आधार नाथ हुं चेरो तेरो।

दीन-हीन अब देख करो प्रभु वेग सहाइ, चातक ज्युं घनघोर सोर निज आतम लाइ।"[८८]

दोनो कविराज द्वारा ' नपिता परमात्माके अनेकविध स्वरूपो और भावोका सजीव चित्रण अनुपम-प्रभावक-सप्रेषणीयताके साथ हुआ है। वात्सल्यरस छलकती इन पक्तियोकी आस्वाद्यता उर्मिल भावोको उछालती है-

"छोटी छोटी गोडियाँ, छबिली छोटी नख ज्योति, मोती मानो कमल दलनि पर।

ललित अंगन खेलें ठुमक ठुमक चलें, झुंझनुं झुंझनुं पांय पैंजनी मृदु मुखर।

किंकणि कलित कटि, हाटक जटित मनि, मंजु कर कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।

पियरि झीनी झंगुलि, सांवरे सरीर खुली, बालक, दामिनी ओढे मानो बारे बारि घर।।"(गीतावली)

श्री आत्मानदजीके श्री पार्श्वनाथ पलनेमे क्या क्या हरकते करते हैं–

"पालनेमें **जिन पोढइया**......

तूं मेरा लाला **सब जगवाला**, फिर फिर मुख मटकइया. "

और बाल भगवान महावीर कैसे चलते हैं–

"आमेरवाला **त्रिभुवनलाला**, ठुमक ठुमक चल आवे छे "[९१]

दोनो साहित्यकारोके तुलनात्मक अनुशीलन करने पर हमे अनुभव होता है कि तुलसी साहित्यमे जन साधारणके लोचनसे ग्रहित विलक्षण लोकानुभव एव लोकमगलको सर्वमान्य सुक्तियाँ, कीर्तन-पद, उपाख्यान-चरित्र दृष्टान्त, प्रबन्ध काव्यादिमे अलकार-प्रतीक-रसादि योजनाओको विविध छदोबद्ध एव राग-रागिणी द्वारा भगवद् भक्तिकी विभिन्न विधाओके माध्यमसे आदर्श और यथार्थ, विश्वास और सदेह, ग्रामीण समाजकी

रूढि परपरा और शहरी जिंदगीके सामाजिक तनाव-खिंचाव एव स्वयके व्यक्तिगत अनुभवों (अभागीपना एव अनाथता)को संचित किया गया है। जैन दार्शनिक और अद्भूत कवि श्रीआत्मानदजी म ने अपनी रचनाओमें विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तो-जीवन व्यवहार-आगमिक प्ररूपणाओको सहज औ सरल फिर भी विशिष्ट शैलीमे, लोकभोग्य रूपमे विश्लेषित किया, जिसके स्पष्टीकरण और बोधगम्यीकरणके लिए दृष्टान्तो, कथा या चरित्र चित्रणोका उपयोग हुआ है। पद्यमें विशेष रूपसे सगितज्ञ कविराजने विभिन्न राग-रागिणीमे अपने अतर भावोको केवल जिनेश्वर पाद-पद्मोकी परम भक्ति रूप समर्पित किया है तो उपदेश-बावनी आदि कृतियोमे सामान्य जन हितकारक-पथ्यकारी उपदेश समाविष्ट है। उन्हे केवल सर्व कर्म क्षय और मुक्ति महलकी ही आश है। चाहे उसके लिए उन्हे कैसेभी भयकर-कठोर-कष्ट क्यो न उठाने पडे, वे हर मुश्किलको श्री जिनेश्वरकी शरण ग्रहण कर निर्भीकता और निष्कटकतासे पार कर जानेका मेरु सदृश निश्चल-स्थिर विश्वास रखते है। इस प्रकार उनके साहित्यमे कदम कदम पर पाडित्यकी मधुर मुस्कान और परमात्म भक्ति विलास उनकी उत्तमताको बिखेरते हैं।

निष्कर्ष रूपसे हम कह सकते हैं कि उभयके दिलमे जनकल्याण-परमार्थके साथ आत्मकल्याणके लिए 'प्रार्थनायें-याचनाये-मनुहार प्राप्त होते हैं। दोनोको विश्व कल्याणके मनोरथ सिद्ध करने थे जिनमे श्रीआत्मानदजी म शतप्रतिशत सफल रहे हैं जबकि तुलसीदासजी उस निसेनीके सोपान चढते चढते थक गये-हार गये और वही ठप्प हो गए। जो तहलका जैन जगतमे श्रीआत्मानदजी म के साहित्यने मचाया वह अनूठी रग भरी जागृति लाया है तो श्रीगोस्वामीजीके काव्य तत्कालीन प्रचलित काव्य धाराओके सफल प्रयोगसे जन-जनकी हृदयतंत्रीको मुखरित करते है-ये उनकी कमपात्रता नही।

<u>आर्यसमाज संस्थापक महर्षि दयानंद और जैन संविज्ञ आद्याचार्य श्रीआत्मानंदजी म.सा.:-</u>

यहाँ ऐसी दो विरल विभूतियाँ-महान आदर्श महात्माओकी तुल्यातुल्यता पर विचार विमर्श किया जा रहा है-जिन्होने स्वयंके सपूर्ण जीवन पर्यत सत्यके अन्वेषण-आचरण और सत्यके ही प्रचार-प्रसारमे, सद्धर्मकी सुरक्षामे, समाज कल्याण-समाज नवनिर्माण और समाजोत्थानमे युगप्रधानकी भूमिकाये निभायी है।

यह वह समय था, जब एक ओर पश्चात्य सभ्यता और धार्मिक विचार धाराकी मद-मद-खुशबोदार लेकिन पाश्चात्यताके विषसे विषाक्त बयार बह रही थी, जो भारतीय सस्कृतिकी आत्मघातक सिद्ध हुई। दूसरी ओर भारतीय समाज, सभ्यता और कुछ रूढिगत/विकृतियोके कारण अदर ही अदर खोखला होता जा रहा था। यत्रके इन दो दलोंके य कुचले जानेवाले भारतीय साधारण जनमानस-विविध सुविधाओके प्रलोभनोसे और स्वयकी विभिन्न अपेक्षा-अभिलाषाओकी पूर्त्यार्थ-स्वधर्म शत्रु बनकर मुहमोड रहा था, तो परधर्मको गले लगा रहा था और उसीमे ही मानो उसे आरामकी सास या स्वयंके गौरवका अनुभव हो रहा था । इन परिस्थितियोका निर्माता महा अज्ञानाधकार था, जो जनजीवनको पतनकी गर्तमे गिराता रहा था। इससे भी अधिक सोचनीय था, धार्मिक अज्ञान। माना जाता है कि सर्व अज्ञानको धर्म ज्ञान-प्रकाशसे आलोकित किया जा सकता है लेकिन धर्म सिद्धान्तके अज्ञान रूप महाअजगरने जिन्हे निगल लिया हो उसको कोई भी शक्ति नही बचा सकती। ऐसे ही माहौल बीच अधमता-क्रूरता-जोहुकमी-अज्ञानता-त्रस्त रूढिवादितादि विविध प्रकारकी चक्कियोमे पीसा जाता समाज अपने उद्धारककी प्रतीक्षा कर रहा था।

उस अधाधूध-निबिड अधकारमे ज्ञान ज्योतिसे भारतीय प्रजाको रोशन करनेवाले सत्यके मशालची-महारथी-निर्भीक-साहसिक-अथक-अनवरत-अप्रतीम कार्यशील-प्रमुख दो युग प्रणेताओका आविर्भाव हुआ।(१) एकका उद्गम स्थान था गुजरात और दूसरेका अवतरण हुआ था वीर प्रसूता पजाबमे।(२) एक थे ब्राह्मण कुलोत्पन्न शिवपूजक-कर्मकाडी पिताके पुत्र और दूसरे थे-राजा रणजीतसिंहजीके वीर सुभट-क्षत्रिय कुलीनके लाडले बेटे।(३) बाह्य व्यक्तित्वकी तुलनासे प्रतीत होता है कि दोनोकी देहगठन और चेहरा-मोहरादिकी साम्यता, उनमे सहोदर बधु युगलकी भ्रान्ति पैदा करती थी। एकने व्यायाम-प्राणायामादिसे और दूसरेने

स्वय-नैसर्गिक रूपसे शारीरिक सुदृढ गठन और बलिष्ठ देह सामर्थ्य प्राप्त की थी।(४) दोनो आजीवन **भीष्म ब्रह्मचर्यधारी** थे, फलत दोनोंके मुखारविंद पर **त्रिविध-त्रिविध** ब्रह्मचर्यका देदीप्यमान तेज चमकता था ।) दोनोने बाल्यकालमे ही सांसारिक मोह बंधनोसे मुक्त होकर स्व-पर आत्म कल्य ारी साधुत्वको प्रश्रय दिया था। यह बात अवश्य है कि श्री दयानदजीने माता-पिता-परिवारादिके खिलाफ-सभीके भयकर **विरोधमें भी** घरसे भागकर संन्यास लिया। यहाँ तक कि, तलाश करके, उन्हें ढूढ निकालनेमे सफल पिता द्वारा चौकी-पहरे लगाकर उनको घर वापस ले जानेके प्रयासको चकमा देकर-निष्फल बनाकर-उस फदेको तोडकर दुबारा भाग गये, जबकि श्रीआत्मानदजी म सा ने दीक्षाका विरोध करनेवाले परिवार-ममतामयी माता और पालक पिता जोधाशाहजीको अपने उत्कट वैराग्य भावसे अवगत करवाके, युक्ति-प्रयुक्तियोसे उन्हे समझाकर आश्वस्त किया और उनकी हार्दिक सर्व-सम्मति पूर्वक-अतराशिषोके साथ जैन साधुत्व अगीकार किया। प्राय यही कारण हो सकता है कि सभीको दु खित करके सन्यास धरनेवाले श्री दयानदजीको आजीवन अनेक भयकर कष्टोका, जीवलेवा विकट परिस्थितियोका सामना करना पडा, घोर वनो-जगलोमे भटकना पडा और हिमाद्रिकी बर्फिली पहाडियोमे शरीरको गालना पडा, भूख-प्यास, सर्दी-गरमी सब कुछ सहा, इतने पर भी सत्यमार्गके तलाशनेवाले ये महर्षि मानव जीवनके साफल्यरूप चरम सत्य–आत्मा–परमात्मा और ससार-मुक्ति एव कर्म-धर्मके विषदोहन और अमृत आस्वादनका लाभ प्राप्त न कर सके। जबकि श्रीआत्मानदजी म को स्वजन-परिजनोके स्नेहासिक्त हार्दिक आशीर्वादोके सगीन पीठबलने उनके जीवनराहकी प्रत्येक डगरको अति उज्ज्वल बनाया। जीवनोद्यानके (स्थानकवासी मत स्वीकार रूप) शूल भी फूल (सविज्ञ मार्ग प्राप्ति रूप) बने, प्रत्येक अवरोधके निरोधमे निष्कटक-सदैव सफल होकर सर्वोत्कृष्ट जीवनके अधिकारी बन सके।(६) दोनोको ज्ञानगगाकी निर्मलधाराके अमृतपानकी अनमिट प्यास सदा बनी रही थी, जिसके लिए दोनोने हिन्दुस्तानके कोनोकी खाक छान ली थी। जीवत सत्यकी प्राप्तिकी तलप सर्वदा बनी रहती थी। इन पुरुषार्थोके परिणाम स्वरूप श्रीदयानंदजीको प्रज्ञाचक्षु श्रीविरचदजी गुरुमुखसे वेद ज्ञान-नीरके प्रवाहमे स्नान करनेका अवसर प्राप्त हुआ जबकि श्रीआत्मानदजीको भी प्राज्ञ- प्रतिभ श्रीरत्नचद्रजी म से आगमामृतमे निमज्जन करके अमरश्रुतकी विरासतकी उज्ज्वल आभासे आलोकित बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।(७) दोनोने ज्ञान प्राप्तिमे आनेवाले अनेकविध कष्ट-सकट-तकलीफोका मर्दानावार मुकाबला करके अपने लक्ष्य-प्राप्तिकी ओर आगेकूच बनाये रखी।(८) दोनोकी विलक्षण याददाश्तके कारण उनके गुरुओने भी उन्हे दिल खोलकर ज्ञान-दान दिया। श्रीदयानदजीको उनके गुरु द्वारा एक . र पाठको देनेके पश्चात् उन्हे दुबारा समझानेकी आवश्यकता नही हुई। उसी प्रकार श्रीआत्मानदजी म सा ने भी प्रतिदिन ३५० श्लोक याद करके अत्यल्प समयमें समस्त ढूढक आगम साहित्यको कठस्थ कर लिया था।(९) दोनोमे अनूठी प्रतिभा, अनुपम प्रताप और अतुल प्रभावके होते हुए भी दोनो स्वयके गुरुके प्रति परिपूर्ण रूपसे समर्पित भक्तिभाव युक्त, विनम्र शिष्य थे।(१०) इसीसे प्रभावित होकर दोनोके गुरुवर्योने अतिम आशीर्वचन रूप कुछ आदर्श फर्माये थे। यथा-स्वामी श्रीवीरजानदजीके शब्द थे-**"बेटा आज हिन्दु जाति वेदोंके वास्तविक ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ है। मेरी यही गुरुदक्षिणा है कि तू संसारमें वेदोंके सत्यज्ञानका प्रचार कर, हिन्दु समाजकी बुराइयोंको दूर कर दे और अपने जीवनको जातिकी सेवामें अर्पित कर दें।"**[८]– वैसे ही नवयुवान सयमी श्रीआत्मानदजीको मुनि श्रीरत्नचद्रजीने उपदेश दियाकि, **"वत्स, आज साधु आगमोंका सच्चा अर्थ जनताको नहीं बताते। आगमोंमें मूर्ति-पूजाका निषेध नहीं, विधान है।.... परंतु लोग आगमके उलटे-सीधे अर्थ करके सत्यताका लोप कर रहे हैं। तू स्वयं आगमों पर निष्पक्ष होकर विचार कर तथा जैन जातिको सच्चे धर्मसे आनाह करते हुए** अपने **कर्तव्यका पालन कर।"**[९] इनसे स्पष्ट है कि दोनो महारथी-सत्यके मशालची-सत्यकी नीव पर ही सुदर प्रासाद निर्माणके लिए निर्भीक उल्लासके साथ कार्यान्वित हुए।(११) दोनोका प्रचार क्षेत्र पजाब ही रहा है। आज पजाबमे आर्यसमाजकी अनेक शाखाये, स्कूल-शिक्षा आदि तथा अनेक नभचुबी जिनमदिरोका निर्माण, सभाभवनो या आराधना भवनो आदिका निर्माण उन्हीकी देन है।(१२) बाहय व्यक्तित्व सदृश उभयके

आतरवैभवमे भी दोनोका साम्यता दृष्टव्य है । परोपकार-दया-करुणादि सद्भावनाओके कारण दयानदजीने **मानवकल्याण, मानवसहानुभूति और मानवसेवाको** प्रदर्शित भी की और प्रसारित भी । जिनके कारण समाजके दीन-हीन और पीड़ितोको विशेष रूपसे देवसमान उद्धारककी प्राप्ति हुई। जबकि 'अहिंसा परमोधर्म'जो हार्दको समेटे , श्री जैनधर्मके सच्चे प्रचारककी तो प्रत्येक सासमे इन्ही भावोंके सूर बजते रहते थे।(१३) दोनोने समाजके अज्ञानाधकारको दूर किया और विशिष्ट लोकक्रान्तिकी ज्वाला प्रज्वलित करके समाजमे नव जागृतिका शख फूका, जिससे परापूर्वकी रूढि परपरा और अध विश्वासादिको भगानेमे प्रवृत्त उनको आजीवन कष्टप्रदायि अनेक प्रतिकारोसे टक्कर लेनी पडी।(१४) दोनोने जन साधारणकी भाषा हिन्दीमे ही अपनी प्रतिबोधात्मक उपदेशधाराको सभा और साहित्यके माध्यमसे भाविक जिज्ञासु भक्तो तक पहुँचायी। सस्कृत-प्राकृतके उत्तम विद्वद्वर्यो द्वारा सुविधाजनक लोककल्याणका ध्येय रखकर ही बोल-चालकी भाषाका प्रयोग किया गया।(१५) आजीवन अत्यन्त कडे पुरुषार्थानन्तर भी, अनुपयुक्त-उलटे सस्कार बीज वपनके फलस्वरूप-श्री दयानदजीको मानवभव स कल्यरूप चरम सत्यकी प्राप्ति न हो सकी, न दार्शनिक और सैद्धान्तिक विचारधाराओंके प्रवाहको निश्चित दिशा प्राप्त हो सकी। ईश्वरके जगत्कर्तृत्व या सृष्टि सर्जनकी प्रक्रियामे विभिन्न सहयोगी कारणो (उपादान-निमित्त-साधारण) अथवा मोक्ष विषयक धारणाये भी स्थिरत्व धारण न कर सकी-यथा-"**सत्यार्थ प्रकाशके प्रथम संस्करणके लिखे जाने तक स्वामीजीको जीवकी उत्पत्ति तथा उसका अत्यन्त प्रलयमें विनाश मान्य था। कालान्तरमें वे ईश्वर, जीव तथा सृष्टिकी उपादानभूत प्रकृतिको अनादि और अनश्वर मानने लगे। यह तो स्पष्ट ही है कि मुक्तिसे पुनरावृत्तिकी धारणा स्वामीजी द्वारा बहुत बादमें स्वीकार की गई थी**"[१] इससे हम यह कह सकते है कि स्वामीजीके मतव्य परिवर्तनशील थे। अत न तो वे स्वय सर्वज्ञ थे, न सर्वज्ञके पथके पथिक ही थे, जिसका उन्होने स्वय स्वीकार किया था-"**इतना लक्षमें रखना कि मेरा कोई स्वतंत्र मत नहीं है, और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ। यदि मेरी कोई गलती पायी जाय तो युक्तिपूर्वक परीक्षा करके उसको सुधार लेना**"।[२] जबकि श्रीआत्मानदजी म सा जबसे सत्य सविज्ञ मार्गी-सर्वज्ञके पथके पथिक-हुए है उनके वाणी विलास या वाड् मयमे कही परभी असवादिता अथवा पूर्वापर विरोध दृष्टिगोचर नही होता। न उन्हे अपने सैद्धान्तिक खयालोमे किसी प्रकारके परिवर्तनकी आवश्यकता ही हुई है।(१६) उनकी मोक्षविषयक प्ररूपणा-जो नवम समुल्लासमे की गयी है- वह सोचनीय है। इसकी विस्तृत विश्लेषणात्मक समीक्षा करते हुए श्रीआत्मानदजी म सा अपने 'अज्ञान-तिमिर-भास्कर'-प्रथम खडमे उनके परस्पर विरोधी-असमजसकारी प्रलापो और मुहुर्मुहुर्परिवर्तनशील विचारधाराओका स्पष्टीकरण किया है-"**दयानंदजी वेदोंकी संहिता और ईशावास्योपनिषदके अतिरिक्त वेदोंके ब्राह्मण आरण्यक आदि वैदिक ग्रन्थोंको प्रमाणिक नहीं मानते हैं। लेकिन 'सत्यार्थप्रकाश' और वेद भाष्य भूमिकादिमें शतपथ-ऐत- य-तैत्तरेयादि ब्राह्मण-आरण्यक-निघंटु-निरुक्तादिके प्रमाण लिखते हैं और मुक्ति विषयक भी परस्पर विरोधी विभिन्न प्ररूपणाओंके प्रमाण लिखकर अपने बावलेपन या उन्मादको ही प्रकट किया है।**"[१७] महर्षि दयानदजीमे अन्यको नीचा दिखानेवाले हुकार युक्त अक्खडपन और रूखापन उनके वाणी-विचार (प्रवचन एव साहित्य)से झलकता है। जबकि श्री आत्मानदजी म सा निरभिमानी, सरल, अन्यके प्रति सराहनीय गुणानुरागितादि गुणोपेत थे। फलत श्रीदयानदजीने अपनी उच्छृखलताकी परिचायक वृत्ति **धर्मशास्त्रके मूलरूपमें वेदको निर्धारित करके वेदके मनभावन अर्थघटन करके वेदभाष्य रचकर** प्रदर्शित की जबकि श्रीआत्मानदजी म सा ने अपनी प्रत्येक कृतिमे पूर्वाचार्योंके सदर्भोको निरतर अपने नयनपथ पर रखा है और उसकी परिपुष्टिकी ओर ही पुरुषार्थ किया, तदपि बारबार उन पूर्वाचार्योंके आशय विरुद्ध-अज्ञानतावश हुई किंचित् अशुद्धि या त्रुटिके लिए 'मिथ्या दुष्कृत' याचनापूर्वक नम्रतासे क्षमा-प्रार्थना की है।(१८)दोनोके वेश विन्यास जैसे भिन्न थे, वैसे ही वैचारिक विभिन्नता भी स्पष्ट दर्शित होती है। वैदिक धर्मके ध्वजधारीको प्रतिमा-पूजन-प्रतिरोध करके वेद और एक ईश्वर द्वारा हिंदु सगठन और सामर्थ्यशाली जोश प्रकट करवानेकी ख्वाहिश थी तो श्वे मू पू भेखधारीको जैनजातीके परापूर्वधारित, प्राचीन और शास्त्रोक्त प्रतिमापूजनके गौरवको प्रतिष्ठित करके उसे प्रचारित करनेकी उम्मीद थी।(१९)

दोनोने स्वमत स्थापनाके लिए अनेक वाद-चर्चा-सभाये भी की थी, लेकिन **ईश्वरकी सृष्टि सर्जना**-उसके **उपादान**, निमित्त, साधारण कारण, **ईश्वरकी सर्वशक्तिमानतादि विषयक उलझी गुत्थियोको जब वे विभिन्न तर्कों द्वारा** सुलझानेका प्रयत्न करते थे अनायास **ही** उसमे ऐसे उलझते जाते थे कि मकडी सदृश स्वयके उस जालसे बाहर निकलनेका उन्हे कोई मार्ग नही मिलता था।"**इस सारे विवेचनको पढ़कर** लेखकके **तर्कोंकी दुर्बलताकी ओर अनायास ही ध्यान जा सकता है।"**(२०)-"अज्ञान ही पाप है, इसके बिना पाप हो ही नही सकता। अतः पापका मूल (अज्ञान) महापाप है और ईश्वरीय कानूनका अज्ञान सर्वाधिक महापाप है। "बाबावाक्यको प्रमाण न मानकर सत्यासत्यकी स्वय परीक्षा करके सत्यका स्वीकार और असत्यका परिहार करना ही महापुरुषोका यथोचित जीवनोद्देश्य होता है।" श्रीदयानदजीके ये विचार आवकार्य और स्वीकार्य भी है, लेकिन वर्तनमे उस राहको अपनानेके पुरुषार्थमे उनके कदम लडखडाये है और वे स्वयके सत्यादर्शसे च्यूत हुए है। तर्ककी कैंची चलाकर (खडनात्मक व्यूह आजमाकर) उन्होने अन्य दर्शनोकी धज्जियॉ उडायी हैं। **जिनमें स्वस्थ खंडन-मंडनकी खुश्बूके प्रत्युत एकांगी (मेरा सो सत्य)**--विभिन्न दर्शनोकी प्ररूपणाकी उचितानुचितताके, **मध्यस्थ** भावकी तुलापर प्रमाणित करनेकी परवाह किये बिना, स्वयके दिलदर्पणमे तद्तद् दर्शनकी जो **प्रतिच्छबी** प्रतिबिम्बित हुई उसीके आधार पर किये **प्रलापोंकी बदबू** फैली हुई है। असत्यका प्रतिकार उचित **अवश्य है**, लेकिन जिसे असत्य माना, वह वास्तविक असत्य है-प्रतिकार योग्य है कि नही, उसकी न्याय सगतताकी कसौटी भी उतनी ही अनिवार्य है।

द्वादश समुल्लासमे जैन दर्शनके षड्द्रव्यके लिए प्रस्तुत विचार मूर्खके प्रलाप सदृश दृष्टिगोचर होता है। प्रकरण रत्नाकर' अनुसार **धर्मास्तिकाय** और अधर्मास्तिकायके लक्षणादिसे ज्ञात होनेके पश्चात् उन्होने अपना अभिप्राय दिया कि, "जैनियोका मानना ठीक नही, क्योकि **धर्माधर्म** स्वतत्र द्रव्य नही आत्माके गुण है अत दोनोका जीवास्तिकायके गुणरूप समन्वय हो सकता है। अत उन्हे 'छ' नही 'चार' द्रव्य मानने चाहिए"। यहॉ धर्मास्तिकाय गतिसहायक और अधर्मास्तिकाय स्थिरता सहयोगीके गुणधारी स्वतत्र द्रव्यके विषयमें उन शब्दो-'धर्म' और 'अधर्म'-का रूढ अर्थग्रहण और विशिष्ट पारिभाषिक अर्थका त्याग करके जो एकागी अभिप्राय पेश किया है, यही उनकी स्वमत कदाग्रहताको उद्घाटित करता है (इस धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकायके समान लक्षण, गुण संयुत पदार्थ-द्रव्य-'इथर'का अन्वीक्षण- आधुनिक भौतिक विज्ञानने भी प्रस्तुत किया है-जो जैन दर्शनके षट्द्रव्य सिद्धान्तकी प्रमाणिकताकी पुष्टि करता है) इसी प्रकार जैन दर्शनके 'स्याद्वाद', 'सप्तभंगी' आदि दार्शनिक सिद्धान्त और गु-अवगाहनादि जीव-विज्ञान सबधी अत्यन्त प्रमाणभूत सूक्ष्मातिसूक्ष्म कथ्योको हासीपात्र बनाना यह भी दयानदजीकी जड-कदाग्रह और हठाग्रह युक्त स्वमतराग दृष्टिकी निर्बलता ही मानी जा सकती है। अगर ऐसा न होता तो वे चार्वाक, जैन और बौद्ध-तीन विभिन्न दर्शन(धर्म)मे एकत्व स्थापित करनेका उपहासजनक उपक्रम न करते। जबकि श्रीआत्मानदजी मने जिस किसी दर्शनके विपरित या एकागीपनेका खंडन किया भी है, तो उसकी प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्त कणिकाओका विश्लेषणात्मक अनुशीलन करके किया है। यथा--'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थान्तर्गत प्ररूपित ईश्वर जगत्कर्तृत्व, या जीवोकी कर्ममुक्ति, सृष्टि रचनाके कारणादिके नित्यानित्यत्व या अनादि-अनतता आदिकी जो व्याख्या की है और अयुक्तका खडन किया है-उससे पूर्व ही उन्होने 'सत्यार्थ प्रकाश'का परिशीलन करके उनमे उद्धृत सदर्भ शास्त्रोका-समूचे वैदिक साहित्यको भी अध्ययन किया, तदनन्तर सत्यासत्यके निर्णायक-तटस्थ चिंतन-मननके परिपाक रूप जो कहना था वह कह दिया।

श्री दयानदजी बेतहाशा आक्षेपबाजीके अधे तूफानमे, अन्योकी योग्यायोग्यताका खयाल भी नही कर सके है–जैसे षष्ठम समुल्लासमे अनेक स्थानो पर जैनो पर बेअदबीसे किये गये झूठे आक्षेप। तदनुसार **"जैन और मुसलमानोंने आर्यजातिके पुरातन गौरवको व्यक्त करनेवाले नाना इतिहास ग्रन्थोंको नष्ट कर दिया है, फलतः हम उस युगकी अनेक बातोंसे अनभिज्ञ रह गये हैं।"**– यह आक्षेप उनकी स्वयकी जैन वाङ्मय विषयक-विशेषत इतिहासादिकी अनभिज्ञता प्रमाणित करता है। साप्रत कालमे तो यह बात विश्व विख्यात हो

चूका है कि इतर दर्शनके कई अमूल्य एवं अलभ्य या दुर्लभ्य ग्रन्थ-जो अन्य दर्शनियोके सग्रहमे प्राप्त **नहीं होते-जैन पुस्तकालय या ज्ञान भंडारोमे अथवा ग्रन्थ सग्रहोमे अद्यावधि समुचित रक्षा प्रबन्धके** साथ सकुशल रूपमे विद्यमान हैं। दूसरा, जैन धर्मी छोटेसे छोटा बालक भी एक-एक कागजादि ज्ञानोपगरण या एकएक अक्षरमात्रकी हिफाजतमे धर्म और नाशमे अधर्म मानता है.अत उनको नाश होनेसे बचाते हैं। इस **तरह "जैनो द्वारा ऐसे नाश"की बात कोई उपजाउ, कोरी गप्प ही मानी जायेगी। ऐसे अनेक करुणा जनक गपोडोंके लिए श्रीआत्मानंदजी म सा को उन पर तरस आता है क्योंकि उन्होने कभी भी, कहीं** पर, किसी प्रसगवश ऐसी 'सत्यके मशालची' सदृश आकाश कुसुमोका उपहार समाजको भेट नही चढाया। यहाँ तक कि उन्होने स्वय किसीपर किचड नही डाला। हॉ अन्यके द्वारा फेके गये किचडको आक्रोशपूर्ण तेजाब प्रवाह बहाकर उसकी ठीक सफाई अवश्य की है।

अत हम यह अनुभव कर सकते हैं कि दोनो युगवीरोकी नस-नसमे, रोम-रोममे धर्म और समाजके उत्थानकी प्रबल ईच्छ थी। दोनोकी कर्म-भूमि पजाब देश थी दोनो प्रखर तत्कालीन समाजके जाने-माने वादि थे फ़िर भी उन दोनोंकी मुलाकात कभी न हुई। एक बार जोधपूरमे उनकी मुलाकात-चर्चासभाका आयोजन हुआ लेकिन वह आकार न पा सका। जिस दिन श्री आत्मानदजी म चर्चा हेतु जोधपुर पहुँचे उसी दिन स्वामीजीकी अजमेरमे किसीने विषप्रयोगसे हत्या की। यह बडी दुर्भाग्यवान दुर्घटना हो चूकी। अगर वे दोनो सत्य-गवेषक और फिर भी एकदम विपरित मतवादियोकी भेट हो पाती तो अवश्य कुछ अनहोनी होनी थी। एक नवीन इतिहासका सर्जन, उनके मथन-चितन--जो चर्चामे पेश होता, उससे बन पाता और धार्मिक इतिहासमे अभूतपूर्व क्रान्तिका आविर्भाव होता। फिर भी उनकी जो देन है उसे कोई भी समाज कभी भी नही भूला सकता। श्री पृथ्वीराजजी जैनके शब्दोमे--"**उन महापुरुषोंका** अगर **जन्म न होता तो हिन्दु और जैन संस्कृतिकी कैसी दुर्दशा होती यह कल्पना भी असह्य है। शायद हमारे लिए यह जानना भी असंभव हो जाता कि किसी समय भारत विश्वका अध्यात्म गुरु रहा है। उन्हींके प्रभावसे चिकागोकी सर्वधर्म परिषदमें भारतीय संस्कृतिका बोलबाला रहा।**"[13A]

साहित्यिक युगप्रवर्तक श्रीभारतेन्दु हरिश्चंद्रजी और सामाजिक युगनिर्माता श्रीआत्मानंदजी म.सा.:- यहाँ आधुनिक युगके-विशेषत गद्य साहित्यके प्रवर्तक श्रीहरिश्चद्रजी और हिन्दी भाषामे जैन वाङ्मयके प्रथम प्रयोजक श्रीआत्मानदजी म सा.की साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय विषयक हुई रचनाओकी विशिष्टताओकी तुल्यातुल्यताका परामर्श दिया जाता है, क्योकि दोनो समकालीन और साहित्य क्षेत्रान्तर्गत समकार्यिक भी थे। चाहे उन दोनोके साहित्य निर्माणके उद्देश्यमे हमे पूर्व-पश्चिमका भास हो- क्योंकि एकको अभीष्ट था हिन्दी भाषाके गौरवकी वृद्धि--उत्थान व उत्कर्ष, जबकि एकको अभिप्रेत था सस्कृत-प्राकृतके वाङ्मय-वारिधिके तलगृहमे विधविध एव अपरपार ज्ञान-विज्ञानरूप रत्नराशि अतर्निहित थी, उन्हे जन साधारणकी व्यवहार भाषा हिन्दीमे प्रकट करना और जैनधर्म विषयक इतर दर्शनियोमे प्रचलित भ्रामक मान्यताओके उलझे हुए जालको सुलझाकर विश्वके जैन वाङ्मय विषयक अज्ञानाधकारको विनष्ट करना--फिरभी दोनोके अतर्वेगो और उभयकी अभिव्यक्तियोसे हमे ऐसे आसार मिलते है जो हमे उनकी तुल्यातुल्यताके अन्वेषणकी ओर आकर्षित करते है।

उन्नीसवी शतीके उत्तरार्धके पुनर्जागरणकालमे औद्योगिकरण और प्रविधिकरणके सहारे सजोये गये 'परि-देश'के सपने साकार रूप धारण न कर सके। अत व्यवस्थाका या प्रविधियोका पूर्जा बननेवाले व्यक्ति स्वतत्र व्यक्तित्वके स्थानमे गैर-रोमैंटिक और अमिथकिय साक्षात्कार रूप नूतन आकाक्षाओके सहारे देश-राष्ट्र-धर्म-ईश्वर आदिको आधुनिक परिदेशमे सजानेकी कोशिश करते हुए नयनपथ पर दृश्यमान होने लगे थे। उनकी अत चेतनाकी अभिव्यक्तिमे अधिकांशत 'स्वयसे अभिज्ञ होकर पाश्चात्य बधनोसे मुक्तिकी भावना' मुखरित हुई। इस प्राचीन और अर्वाचीन युगके सधिकालको जिनके नामसे पहचाना जाता है, वे-साहित्यिक युग प्रवर्तक श्रीहरिश्चद्रजी (इ स १८५० से १८८५), इतिहास प्रसिद्ध शेठ अमीचदजीकी वशपरपरामे अवतरित

तत्कालीन प्रसिद्ध कवि बाबू गोपालचद्र गिरिधरलालजी के पुत्र थे. जिन्होने पितृव्य सस्कारोमे झीलते हुए बाल्यकालसे ही काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी और अल्पायुमें ही अपनी कवित्व प्रतिभा और सर्वतोमुखी रचना कौशलका ऐसा सक्षम परिचय प्रदान किया कि समसामायिक पत्रकारो साहित्यकारो द्वारा उन्हे 'भारतेन्दु'की उपाधिसे सम्मानित किया गया जैसे श्रीआत्मानदजी म को भी उनके द्वारा किये गये अनेकविध समाजोत्थानके-धार्मिकोत्कर्षके और जनजीवनोन्नतिके कार्योंसे प्रभावित होते हुए, अखिल भारत जैन समाजने मिलकर सविज्ञ शास्त्रीय आचार्य पद पर विभूषित किया और राजस्थानके जोधपुरादि शहरोंके जैन समाज द्वारा 'न्यायाभोनिधि'की पदवी प्रदान हुई।

श्री भारतेन्दुजीकी सर्वतोमुखी प्रतिभाके लिए आ श्री रामचद्रजी शुक्लके प्रतिभाव पठनीय है—"अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके बलसे एक ओर तो वे पद्माकर-द्विजदेवकी परंपरामें दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेशके माइकेल और हेमचंद्रकी श्रेणिमे; एक ओर राधा-कृष्णकी मूर्तिमें झूमते और नई भक्तमाल गूंथते दिखाई देते है तो दूसरी ओर मंदिरके अधिकारी-टीकाधारी भक्तोंकी हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, आदि पर व्याख्यान देते। प्राचीन और नवीनका यही सुंदर सामंजस्य भारतेंदुकी कलाका विशेष माधुर्य है।"[१४] ठीक उसी प्रकार श्री आत्मानदजी म सा के विषयमे श्री पृथ्वीराजजी जैनने अपने उद्गार अभिव्यक्त किये है—"उनका जीवन प्रयोगात्मक कहा जा सकता है। उन्होंने सत्यधर्मका अन्वेषण किया, सत्यधर्मके प्रचारके लिए सर्वस्वकी बाजी लगाई और जैन समाजमें आधुनिक नवीन युगका श्री गणेश किया। वे क्रान्तिके अग्रदूत थे और हमारे सामाजिक जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उन्होंने समयानुकूल परिवर्तनका संदेश दिया, जिसकी नींव थीं भ.महावीरका संदेश- अहिंसा और विश्वमैत्री।..... आपका त्याग, संयम और तप उच्च कोटिके और शास्त्रानुसार थे। महान कवि और लेखक होनेके साथसाथ वे संगीतज्ञ भी थे..... वादमें आप अजेय और दृढ़ प्रतिपक्षी थे...... समाजमें नयाजीवन, नयीभावना, और नूतन विचारधारा प्रवाहित करनेके लिए कष्ट-कठिनाइयोंके बावजूद भी वाङ्मय रचना, वक्तृत्वकला और उग्र विहारको प्रचार माध्यम बनाकर शुद्ध अध्यवसाय, ठोस ज्ञान-प्रचार, और सत्य मार्ग पर कदम बढ़ाते गये। ऐसे साहसिक और शूर थे-न हारना जानते थे न डरना।"[१५]

साहित्य— श्री हरिश्चद्रजीने 'जातीय संगीत' अर्थात् लोकगीत, पद, कवित्त-सवैये आदि अनेक प्रकारके प्रगीत रूप सामाजिक काव्य रचनाओ पर बल दिया, फिरभी उनके पद्य साहित्यकी वैविध्यता हैरतयुक्त है, जिनमे शृगारपरक-मार्मिक-भक्तिके गीत, पर्वगीत, सामाजिक परिवेश-व्यग्यात्मकता-प्रकृति चित्रण-पैरोडी-देशप्रेम आदि विभिन्न आयामोंका परिचय मिलता है। भारतेन्दुजीके काव्यमे प्रमुख रूपसे देशभक्तिकी छलछलाती धारा देखें, 'भारत दुर्दशा'मे —

"तुममें जल नहीं जमुना गंगा, बढ़हु वेग करि तरल तरंगा,
धोवहु यह कलंककी रासी, बोरहु किन झट मथुरा कासी।
बोरहु भारत भूमि सबेरे, मिटे करक जियकी तब मेरे।
बढ़हु न वेगि धाई क्यों भाई, देहु भारत भुव तुरत डुबाई;
धोवहु भारत अपजस पंका, मेटहु भारत भूमि कलंका।"

कविकी व्यथा अपनी सीमाको लाघकर वहाँ पहुँचती है जहाँ 'न रहे बास, न बजे बासुरि' अर्थात इतनी कलकित मातृभूमिसे तो अच्छा है उसका अस्तित्व ही नामशेष हो जाय। क्योकि यह वह भूमि है जहाँ-

"कोटि कोटि ऋषि पुण्य तन, कोटि कोटि अति शूर
कोटि कोटि बुध मधुर कवि मिले यहाँकी धूर".. अत उसके लिए क्या किया जाय यही सूझत नही—
"सोइ भारतकी आज यह भइ दुरदसा हाय,
कहा करें कित जायें, नहिं सूझत कछु उपाय।"

देशभक्त श्रीभारतेदुजी सदृश प्रभुभक्त श्रीआत्मानदजीके साहित्यमे सपूर्ण समर्पित स्वकीया भक्तिके

फूटकल पद-गीत-प्रगीत, नीति विषयक मुक्तक-सवैया, योग-ध्यान-साधनादिके विविध धार्मिक अनुष्ठानादिके पद एवं गीत (स्तवन-सज्झाय आदि प्रकारान्तर्गत) लोकगीत-ढाल-देशियों और विविध राग रागिणीमे प्रस्तुत किये गये हैं, तो विभिन्न पूजा प्रबन्धोका और तात्त्विक मुक्तकोका आक । किया गया है। अध्यात्म जगतकी दुर्दशा देखकर श्रीआत्मानदजी म सा की जो आत्मपुकार उठी है, वह भी श्रोतव्य है,—

"प्रथम विरह प्रभु तुम तणो, दूजो हो पूरवधर छेद–देखो गति करमनी।
पंचमकाल कुगुरु बहु, पार्यो हो जिनमत बहु भेद–बातको तरनकी।
राग द्वेष बिहु मन बसे, लरे हो जिस सोकण रांड–भूले अति भरममें।
अमृत छोर जहर पिए, लिए हो दुःख जिन मत छांड–बांधे अति करममें।"[१६]

प्राचीन-अर्वाचीनके स्वस्थ सामजस्यकी चेतनाको उभारनेवाली काव्य-कृतियोके आस्वादन करते हुए हमे उनके दास्य और माधुर्य भाव, नायक-नायिकाके सौंदर्य वर्णनके साथसाथ कर्तव्य-निर्देशन, इतिवृत्तात्मकता और हास्य-व्यग्यका पैनापन--आदिका अनुभव होता है। उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्तिके फलस्वरूप ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली प्रवृत्तियोकी झलक मिलती है, जैसे-काव्यके उपयुक्त 'ब्रजभाषा'को ही मानने पर भी 'फूलोका गुच्छ' आदि कृतियोकी रचना खड़ीबोलीमे की हैं, तो उर्दू रचनाये भी प्राप्त होती हैं। डॉ सुरेशचद्र गुप्तके अभिप्रायसे–**"संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि कविताके क्षेत्रमें वे नवयुगके अग्रदूत थे। अपनी ओजस्वीता, सरलता, भावमर्मज्ञता और प्रभविष्णुतामें उनका काव्य इतना प्राणवान है कि उस युगका शायद ही कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।"**[१७] उनके गद्य विधाके 'नाटक' प्रकारकी कृतियोमे भी कई पद्य रचनाये प्राप्त होती है। श्रीभारतेन्दुजीके साहित्यकी दो विद्याये (पद्य और गद्य)मे दो शैलियॉ-(भावावेश युक्त और केवल तथ्य निरूपण) प्रयुक्त हुई है। प्रथममे छोटी-छोटी और सरल पदावलि और व्यवहार भाषाका स्वरूप दर्शित होता है तो कभी चितवनावस्थाकी भाषा गंभीर और लम्बे लम्बे वाक्य विन्यास युक्त है, जिसमे सस्कृत शब्दोका मेल अधिक मात्रामे किया गया है। भावावेश शैलीका उदा—

"प्रिय प्राणनाथ मन मोहन सुंदर प्यारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे......
घनश्याम गोप-गोपी-पति गोकुलराई, निज प्रेमीजन हित नित नित नव सुखदायी।
बृन्दावन रक्षक, ब्रज-सरबस, बलभाई, प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई।
श्री राधानायक जसुदानंदन दुलारे, छिनहुँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।"[१८]

एक एक शब्दमे कितने कितने भाव भरे हैं मानो सबकी अलग कथाये बन सकती है । तो दार्शनिक चिंतनधारामे बहता भाषा प्रयोग देखे–**"कहो किमि छूटे नाथ सुभाव ।**
काम क्रोध अभिमान मोह संग तनको बन्यौ बनाव,
ताहू में तुव माया सिर पैं और हु करन कुदॉव,
'हरिचंद' बिनु नाथ कृपाके नाहिंन और उपाव ।"[१९]

अनादि स्वभावके छोडनेका एक मात्र उपाय 'नाथ कृपा'के चिंतनमे पद पूर्णता प्राप्त करता है । इस शैलीके गद्यके दृष्टान्त भी दृष्टव्य हैं–जैसे **'चन्द्रावलि' नाटकमें चन्द्रावलिके विरहोन्मादमें किये गये प्रलाप-अत्यन्त भावावेशमें हुआ है-उसका निरूपण छोटी छोटी शब्दावलिसे अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है तो 'प्रेमजोगिनी' नाटकमें सुधाकरके वचनोंमें काशीका और गुणी-दातार काशीवासियोंका** वर्णन दो-चार पृष्ठों तक चलता रहता है।

श्रीआत्मानदजी म द्वारा भी गद्य-पद्य दोनो विधाओका विभिन्न शैलियोमे सर्जन हुआ है । प्राय उनका गद्य सरल भाषा, सुबोध उदाहरण और आकर्षक वर्णनोसे गूढ विषयोको भी बोधगम्य बनानेवाला सिद्ध हुआ है । इन विभिन्न दार्शनिक-तात्त्विक-धार्मिक-शैक्षणिक विषयोका प्रतिपादन मडनात्मक शैलीमे किया गया है, और इतर दार्शनिको द्वारा किये गये सैद्धान्तिक विषयक भ्रामक आक्रमणोके प्रत्युत्तरमे प्रतिकारात्मक-

आक्रोशपूर्ण-खड़नात्मक शैलीका प्रयोग किया गया है । यथा–"तीथकर **भगवंतकी भक्ति करनेमें तीर्थंकर भगवंत निमित्त कारण है । बिना निमित्त आत्माके उपादान कारण कदेइ फल नहीं देता । तीर्थंकर निमित्तभूत होवें, तब भक्ति उपादान कारण प्रकट होता है । तिससे ही** आत्माके सर्वगुण **प्रकट होते हैं, तिनसें मोक्ष होता है । जैसे घट होनेमें मिट्टी उपादान कारण है, परंतु बिना कुलाल**, चक्र, दंड, **चीवरादि निमित्तके कदापि घट नहीं होता, तैसे ही तीर्थंकर रूप निमित्त कारण बिना आत्माका मोक्ष नहीं हो सकता । इस वास्ते तीर्थंकरकी भक्ति करनी चाहिए ।"[९९] 'जैन तत्त्वादर्श', 'तत्त्व निर्णय प्रासाद', 'अज्ञान तिमिर भास्कर' आदि ग्रन्थोंमें खंडनात्मक शैलीके प्रयोगोंकी प्रचुरता प्राप्त होती है ।**

श्रीआत्मानदजीके पद्यमे भी ब्रजभाषाकी मधुरता युक्त परमात्माके प्रति दास्यभाव और सख्यभाव प्ररूपित हुआ है । इनके पद्यकी शैली विशेषत भावात्मक और उपदेशात्मक रही है, साथ ही कहीकही वर्णनात्मक शैलीका भी प्रयोग हुआ है । परमात्मा भक्तिके भाव प्रवाहमे बहते कवीश्वरकी आरतको सुने-

"तेरे हि चरण कमल को मधुकर, वीरवीर मुख रटित नाम
तुम विरहो, दुःखम पुन आरो, मनबल दुर्बल तनुं कताम.....
मेरे सैयां तू नज़र कर वर्धमान.....
तुम बिन कौन करे मुझ करुणाधाम, करुणा दृगभरी तनुकज निरखो
पामुं पद जिम आतमराम..... मेरे सैयां तू नजर कर वर्धमान....."[१००]

जिसके जीवनमे सयम और ब्रह्मचर्यके गुणकी प्राप्ति हो जाती है उसे शाश्वत् सुखकी प्राप्ति पलक झपकते होती है–इसे उपदिष्ट करते हैं–निज चेतन (आत्मा) के प्रति–

"धर्मनी वातां दाखाजी म्हारा राज रे चेतनजी थाने.....
धर्म जिणंद बतायाजी म्हारा राज रे.....जेहने आलंबिहे, भवोदधिमें न डुबाया जी म्हारा.....
संयम सत्त्व सुहायाजी म्हारा राज रे.....कांइ ब्रह्म अकिंचन तप शुचि सरल गिनायाजी.....म्हारा....."[१०१]

<u>हिन्दी भाषा सेवा</u>–तत्कालीन साहित्यके समान ही भाषाकी प्रेषणीयता प्रभावकता और परिमार्जन भी उल्लेख्य है । भाषाका निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेदुकी कलाके साथ ही प्रगट हुआ । उनके समयमे हिन्दी भाषाका प्रस्तावकाल समाप्त हुआ और स्वरूप स्थिर हुआ । उन्होने साफ, सुथरी और व्यवस्थित शब्दोसे ग्रथित सुसंबद्ध वाक्य रचनामें वाङ्मय निर्माण और मार्मिक प्रवचनो द्वारा हिन्दी भाषाका प्रचार किया । मानो उन्होंने मंत्र रट लिया था –

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल । बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटत न हियको शूल ।।"
"निज भाषा, निज धरम, निज मान करम व्यौहार; सबै बढ़ावहु वेगि मिलि कहत पुकार पुकार।"[१०२]

इस प्रकार हिंदी भाषाकी सरचनामे एव स्वरूप स्थायित्वमे श्रीआत्मानदजी म.का योगदान भी उल्लेख्य है । श्रीजसवतराय जैनके मनोभावोकी अभिव्यक्ति अनुसार –"**उस समय तक धार्मिक ग्रंथ संस्कृत-प्राकृतमें थे, और जो भाषामें अनुवादित थे वे भी पद्यबद्ध-छंदबद्ध थे, क्योंकि गद्य रचनाका प्रचार न था, न कोई स्थिर शैली । महती समस्या थी संस्कृत ग्रन्थोंके स्वाध्यायकी परिपाटी बनाये रखनेकी। इसी कारण पू.श्री आत्मारामजी म.ने संस्कृत-मूल शब्दोंको महत्ता दी और संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंके लिए ऐसे शब्दोंकी भाषामें व्याख्या करनेका क्रम ग्रहण किया । इससे संस्कृत परिपाटीको सम्मान मिला । दैनिक प्रयोगयुक्त तत्त्वचर्चामें संस्कृत शब्द विदित रहें और संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंको उनकी भाषामें ज्ञान-दान मिला । यह सब होते हुए** भी उनकी **भाषाशैली क्रमबद्ध**, साहित्यिक और प्रभावशाली, विषयानुरूप उचित प्रयोग और गद्य होते हुए भी पद्य समान मनोहर और स्वाभाविक प्रवाह लिए हुए **है** । यथा–'जब **सर्व कुछ** जगत्स्वरूप परमात्मा रूप **है तब** तो न **कोई पापी है न कोई धर्मी, न कोई ज्ञानी है** न कोई अज्ञानी, न तो नर्क है न स्वर्ग, साधु **भी नहीं चोर भी नहीं, सत् शास्त्र भी नहीं, मिथ्याशास्त्र भी नहीं; जैसा गौमांसभक्षी तैसा अन्नभक्षी, जैसा स्वभार्यासे कामभोग वैसा ही माता-बहिन-बेटीसे, जैसा चांडाल तैसा ब्राह्मण, जैसा गधा तैसा संन्यासी-सर्व वस्तुका**

कारण ईश्वर-परमात्मा ही ठहरा तब तो सर्व जगत एक-सम, एक स्वरूप है, दूसरा तो कोई है नहीं।"[१०४]

निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा और साहित्यको जिस तरह भारतेन्दुजीने उठाया और संवारा तथा प्रचलित किया वैसे ही जैनाचार्य श्रीआत्मानदजी म सा ने भी अपने अतर्भावोको प्रकाशित करनेके लिए हिंदीका आचल पकडा, उसे जगाया-सजाया-विभूषित करके प्रसारित किया ।

<u>**परिसमाप्ति**</u>–दिग्गज विद्वद्वर्य और अनुपम फनकार श्रीआत्मानदजी म सा के व्यक्तित्वके सगीतमे श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म सा का सत्याभियान, महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म सदृश दार्शनिकता एव अनवरत पुरुषार्थ, श्री आनदघनजी म का अवधुत्व एव परमात्म भक्तिकी मस्ती और श्री चिदानदजी म की आत्मरमणता, सत तुलसीदासजीका सपूर्ण समर्पणभाव, श्री दयानदजीकी खुमारी युक्त धर्मरक्षाका पुरुषार्थ तो श्री भारतेन्दुजीकी तरह ध्येयके प्रति एकनिष्ठ लगनके सप्त सुरोंका सधान अनुभूत होता है. तो उनकी कृतियोके चित्रफलक पर श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म सा सदृश तात्त्विक सैद्धान्तिकता, महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म समान अकाट्य तार्किकता, श्री आनदघनजी म की परमात्म प्रीतिकी अजस्रता, श्री चिदानदजी म तुल्य भावसभर भक्ति वत्सल हृदय, श्री तुलसीदासकी भॉति लोकमंगलकी भावना, श्री दयानदजीकी समाजोत्थान और रूढिवाद विरुद्ध मुकाबला एव श्री भारतेदुजीकी साहित्यिक सेवाके सप्तरगी इन्द्रधनुषी आभासे सुशोभित हो रही है।